श्री

काशीनिवासी गोस्वामी श्रीराम-
चरणपुरीकृत-
भाषानुवादसहिता ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बंबई.

संवत् १९८८, शके १८५३.

मुद्रक और प्रकाशक-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

प्रस्तावना.

सर्व मोक्षकांक्षी महापुरुषोंको विदित होय किं यह शिवसं-
हिता नामक ग्रंथ जो संसारके उपकारार्थ पूर्व श्रीपार्वतीजीके
प्रश्नोत्तर योगमार्ग उत्पत्तिकर्ता श्रीशिवजीने कृपापूर्वक योगोप-
देश किया सो यह ग्रन्थ योगाभ्यासीजनोंको अति उपकारक
है इस हेतुसे कि श्रीशिवजीने इसमें ब्रह्मज्ञान और हठयोगक्रिया
राजयोगसहित उत्तम सरल रीतिसे उपदेश किया है इसको परि-
श्रमसे लाभ करके योगाभ्यासी और मोक्षकांक्षी जनोंके उप-
कारार्थ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकयोगिराजश्री ६ स्वामीस्वयंप्र-
काशानन्दसरस्वतीजीके साधक शिष्य काशीनिवासी गोस्वामी
रामचरणपुरीने अपने लघुमतिके अनुसार भाषानुवाद करके
कल्याण मुंबईमें " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " मुद्रायन्त्राधिकारी गंगा-
विष्णु श्रीकृष्णदास इन्होंके द्वारा प्रकाश किया । अब सर्वशा-
स्त्रवेत्ता बुद्धिमान् जनोंसे प्रार्थना है कि इस ग्रंथके मूल वा टीकामें
जहां अशुद्ध होय उसको कृपापूर्वक सुधार दें; अलम् ॥

गोस्वामी रामचरणपुरी.

काशीनिवासी.

शिवसंहिताविषयानुक्रमणिका ।

इति शिवसंहितानुक्रमणिका समाप्ता ।

अथ उमामहेश्वरमाहात्म्यम् ।

उमा भगवती येयं ब्रह्मविद्येति कीर्तिता ॥
रूपयौवनसम्पन्ना वधूर्भूत्वात्र सा स्थिता ॥ १ ॥
नानाजातिवधूनां हि बिम्बभूता महेश्वरी ॥ २ ॥
यस्याः प्रसादतः सर्वः स्वर्गं मोक्षं च गच्छति ॥
इह लोके सुखं तद्वज्जन्तुर्देवादिकोऽपि वा ॥ ३ ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः शक्राद्याः सर्वदेवताः ।
कटाक्षपाततो यस्या भवन्ति न भवन्ति च ॥ ४ ॥
पीनोन्नतस्तनी प्रौढजघना च कृशोदरी ।
चन्द्रानना मीननेत्रा केशभ्रमरमण्डिता ॥ ५ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरी देवी धैर्यपुञ्जविनाशिनी ।
काञ्चीगुणेन चित्रेण वलयाङ्गदनूपुरैः ॥ ६ ॥
हारैर्मुक्तादिसंजातैः कण्ठाद्याभरणैरपि ।
मुकुटेनापि चित्रेण कुण्डलाद्यैः सहस्रशः ॥ ७ ॥
विराजिता ह्यनौपम्यरूपा भूषणभूषणा ।
जननी सर्वजगतो द्व्यष्टवर्षा चिरन्तनी ॥ ८ ॥
तया समेतं पुरुषं तत्पतिं तद्गुणाधिकम् ॥
ब्रह्मादीनां प्रभुं नानासर्वभूषणभूषितम् ॥ ९ ॥
द्वीपिचर्मावृतं शश्वदथ वापि दिगम्बरम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं ब्रह्ममूर्धौघमालिनम् ॥ १० ॥
तथैव चन्द्रखण्डेन विराजितजटातटम् ।
गङ्गाधरं स्मेरमुखं गोक्षीरधवलोज्ज्वलम् ॥ ११ ॥
कंदर्पकोटिसदृशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणं सृष्टिस्थित्यंतवर्जितम् ॥ १२ ॥
पूर्णेन्दुवदनांभोजं सूर्यसोमाग्निवर्चसम् ।
सर्वाङ्गसुंदरं कम्बुग्रीवं चातिमनोहरम् ॥ १३ ॥

आजानुबाहुं पुरुषं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
पद्मासनसमासीनं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥ १४ ॥
वामदेवं महादेवं गुरूणां प्रथमं गुरुम् ।
स्वयंज्योतिःस्वरूपं तमानंदात्मानमद्वयम् ॥ १५ ॥
यतो हिरण्यगर्भोऽयं विराजो जनकः पुमान् ।
जातः समस्तदेवानामन्येषां च नियामकः ॥ १६ ॥
नीलकण्ठममुं देवं विश्वेशं पापनाशनम् ।
हृदि पद्मेऽथवा सूर्ये वह्नौ वा चन्द्रमण्डले ॥ १७ ॥
कैलासादिगिरौ वापि चिन्तयेद्योगमाश्रितः ॥
एवं चिन्तयतस्तस्य योगिनो मानसं स्थिरम् ॥ १८
यदा जातं तदा सर्वप्रपञ्चरहितं शिवम् ।
प्रपञ्चकरणं देवमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १९ ॥
प्रयाति स्वात्मना योगी पुरुषं दिव्यमद्भुतम् ।
तमसः स्वात्ममोहस्य परं तेन विवर्जितम्॥ २० ॥
साक्षिणं सर्वबुद्धीनां बुद्ध्यादिपरिवर्जितम् ।
उमासहायो भगवान्सगुणः परिकीर्तितः ॥ २१ ॥
निर्गुणश्च स एवायं न यतोऽन्योऽस्ति कश्चन ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः शक्रो देवसमन्वितः ॥ २२
अग्निः सूर्यस्तथा चन्द्रः कालःसृष्ट्यादिकारणम् ।
एकादशेन्द्रियाण्यन्तःकरणं च चतुर्विधम् ॥ २३ ॥
प्राणाः पञ्च महाभूतपञ्चकेन समन्विताः ।
दिशश्च प्रदिशस्तद्वदुपरिष्टादधोऽपि च ॥ २४ ॥
स्वेदजादीनि भूतानि ब्रह्माण्डं च विराड्वपुः ।
विराड् हिरण्यगर्भश्च जीव ईश्वर एव च ॥ २५ ॥
माया तत्कार्यमखिलं वर्तते सदसच्च यत् ।
यच्च भूतं यच्च भव्यं तत्सर्वं स महेश्वरः ॥ २६ ॥

इति उमामहेश्वरमाहात्म्यं संपूर्णम् ।

ॐ

श्रीगणेशाय नमः ॥

शिवसंहिता ॥

भाषाटीकासहिता ।
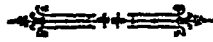
प्रथमपटलः १.

लयप्रकरणम् ।

एकं ज्ञानं नित्यमाद्यन्तशून्यं
नान्यत् किञ्चिद्वर्तते वस्तु सत्यम् ।
यद्भेदोस्मिन्निन्द्रियोपाधिना वै
ज्ञानस्यायं भासते नान्यथैव ॥ १ ॥

विघ्नहरण गणनाथजी, बुद्धिगेह तुअमाहिं ।
विघ्न बुद्धि दोनों विकल, नशत जात जगमाहिं ॥
बुद्धिराज दीजे हमें, बुद्धि पुत्र गौरीश ।
योग युक्ति भाषा करों, धरि गुरु आज्ञा शीश ॥
शिवआलयमें जायके, होत जीव भवपार ।
पाय कृपा गुरु शम्भुकी, भञ्जन चहों केंवार ॥
गौरी अब मोहिं दीजिये, अनुशासनसुत जानि ।
शिवभाषित भाषा रचौं, छूटों भव भ्रम जानि ॥
फिर नहिं आवों जगतमें, योग युक्ति सब जानि ।
मातु कृपा मोपर करहु, शिक्षहु देहु मोहिं ज्ञान ॥

नाम हमारो है नहीं, नहीं कर्म गुण त्रास ।
मातु पुकारत पै अहौं, रामचरणपुरि दास ॥

यं ज्ञात्वमेव यतिनो मतिपूर्वमेतत्
संसारसत्वरकलत्रसुतादि सर्वम् ।
त्यक्त्वा समाधिविधिमेव समाश्रयन्ते
वन्दे कमप्यहमजं जगदादिबीजम् ॥

केवल एक ज्ञान नित्य आदिअन्तरहित है ज्ञानसे अलग अन्य कोई वस्तु सत्य संसारमें वर्तमान नहीं है केवल इन्द्रियोपाधि द्वारा संसार जो भिन्न भिन्न बोध होता है सो यह ज्ञानमात्रही प्रकाश होता है और कुछ नहीं है अर्थात् ज्ञानसे भिन्न कुछ नही है ॥ १ ॥

अथ भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम् ।
ईश्वरः सर्वभूतानामात्ममुक्तिप्रदायकः ॥ २ ॥
त्यक्त्वा विवादशीलानां मतं दुर्ज्ञानहेतुकम् ।
आत्मज्ञानाय भूतानामनन्यगतिचेतसाम् ॥ ३ ॥

सर्व प्राणीमात्रके ईश्वर आत्ममुक्तिप्रदायक भक्तवत्सल जिन मनुष्योंको सिवाय आत्मज्ञानके अन्यगति नहीं है उनके हेतु कृपापूर्वक योगोपदेश करते हैं विवादशील लोगोंको मत दुर्ज्ञानका हेतु है यह त्यागनेके योग्य है ॥ २ ॥ ३ ॥

सत्यं केचित् प्रशंसन्ति तपः शौचं तथापरे ।
क्षमां केचित्प्रशंसन्ति तथैव शममार्ज्जवम् ॥ ४ ॥
केचिद्दानं प्रशंसन्ति पितृकर्म तथापरे ।
केचित् कर्म प्रशंसन्ति केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

कोई सत्यकी प्रशंसा करते हैं, कोई तपस्यापाकी, कोई शौचाचारकी, कोई क्षमाकी, कोई समताकी, कोई सरलताकी, कोई दानकी, कोई पितृकर्मकी, कोई सकाम उपासनाकी और कोई पुरुष वैराग्यको उत्तम कहते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

केचिद्गृहस्थकर्माणि प्रशंसन्ति विचक्षणाः।
अग्निहोत्रादिकं कर्म तथा केचित्परं विदुः ॥ ६ ॥
मन्त्रयोगं प्रशंसन्ति केचित्तीर्थानुसेवनम्।
एवं बहूनुपायांस्तु प्रवदन्ति विमुक्तये ॥ ७ ॥

कोई पुरुष गृहस्थकर्मकी प्रशंसा करते हैं, कोई बुद्धिमान् पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मकी प्रशंसा करते हैं, कोई मंत्रादिक, तीर्थसेवन करना मुख्य समझते हैं, इसी प्रकार मनुष्य बहुतसे उपाय मुक्तिके हेतु अपने मतिके अनुसार कहते हैं ॥ ६॥७॥

एवं व्यवसिता लोके कृत्याकृत्यविदो जनाः।
व्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ८ ॥
एतन्मतावलम्बी यो लब्ध्वा दुरितपुण्यके।
भ्रमतीत्यवशः सोऽत्र जन्ममृत्युपरम्पराम् ॥ ९ ॥

इसीतरह विधिनिषेध कर्मके जाननेवाले लोग पापकर्मसे रहित होके मोहमेंही पडते हैं और जो मनुष्य पुण्यपापका अनुष्ठान पहिले जो मत कहा है उसके आसरे होके करते हैं, उसका फल यह होता है कि मनुष्य वारंवार संसारमें जनमता और मरता है अर्थात् शुभाशुभ कर्म करनेसे कदापि मोक्ष नही होता परन्तु शुभकर्म करनेसे केवल चित्तकी शुद्धि होती है ॥८॥९॥

अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठैर्गुप्तालोकनतत्परैः ।
आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ॥ १०
यद्यत्प्रत्यक्षविषयं तदन्यन्नास्ति चक्षते ।
कुतः स्वर्गादयः सन्तीत्यन्ये निश्चितमानसाः॥ ११ ॥

कोई कोई बुद्धिमान् गुप्त शास्त्रके जाननेमें तत्पर अर्थात् गूढदर्शी बहुत आत्मा नित्य और सर्वव्यापक कहते हैं, बहुत प्रत्यक्षवादी यह कहते हैं कि जो वस्तु प्रत्यक्ष देखनेमें आता है वही सत्य है और कुछ नहीं है, जिनकी बुद्धि स्वर्गादिकके न माननेमें निश्चित है ॥ १० ॥ ११ ॥

ज्ञानप्रवाह इत्यन्ये शून्यं केचित्परं विदुः ।
द्वावेव तत्त्वं मन्यन्तेऽपरेप्रकृतिपूरुषौ ॥ १२ ॥

कोई मनुष्य कहते हैं कि सिवाय ज्ञानधाराके और कुछ नहीं है, जो वस्तु संसारमें वर्तमान देखने या सुननेमें आती है या किसी प्रकारसे उसका होना निश्चय होता है वह सब ज्ञानही है । कोई पुरुष यही जानता है कि सिवाय शून्यके और कुछ नहीं है इसीतरह कोई मनुष्य प्रकृति पुरुष दोनोंहीको तत्त्व मानते हैं ॥ १२ ॥

अत्यन्तभिन्नमतयः परमार्थपराङ्मुखाः ।
एवमन्ये तु संचिन्त्य यथामति यथाश्रुतम् ॥ १३ ॥
निरीश्वरमिदं प्राहुः सेश्वरं च तथापरे ।
वदन्ति विविधैर्भेदैः सुयुक्त्या स्थितिकातराः ॥ १४॥

बहुतसे परमार्थसे बहिर्मुख जिनकी भिन्न भिन्न मति है

अपने मतिके अनुसार कर्मोंको मानते और करते हैं, कोई कहते हैं कि ईश्वर नहीं है इसीतरह बहुत लोग कहते हैं कि यह संसार विना ईश्वरके नहीं है अर्थात् ईश्वरसेही है यही निश्चय जानते हैं, अपनी युक्तिसे बहुत २ भेद कहते और उसमें स्थिरतासे तत्पर रहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

एते चान्ये च मुनयः संज्ञाभेदाः पृथग्विधाः ।
शास्त्रेषु कथिता ह्येते लोकव्यामोहकारकाः ॥ १५ ॥
एताद्विवादशीलानां मतं वक्तुं न शक्यते ।
भ्रमन्त्यस्मिन् जनाः सर्वे मुक्तिमार्गबहिष्कृताः॥१६॥

ऐसे बहुत मुनिलोगोंने नाना प्रकारके मत शास्त्रमें स्थापन किये हैं, यह संसारके मोहभ्रममें पडनेका हेतु है अर्थात् शास्त्रमें बहुत प्रकारके मत देखनेसे मनुष्यके चित्तमें भ्रम उत्पन्न होता है उस भ्रमका फल यह है कि, अपनी बुद्धिके अनुसार कोई एक मत ग्रहण करके मरणपर्यंत उसमें तत्पर मनुष्य रहता है परंतु अमृतलाभ नहीं होता ऐसे विवादशील लोगोंका मत वर्णन करनेको हम शक्य नहीं हैं. मुक्तिमार्गसे विमुख होके सब मनुष्य संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥ १७ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं—कि सब शास्त्रको देखके और वारंवार विचारके यह निश्चित हुआ कि एक यह योगशास्त्र उत्तम परम मत है, अर्थात् यह सबसे उत्तम है. तात्पर्य यह है कि ऐसे

मतको छोडके जिसकी प्रशंसा ईश्वर अपने मुखारविन्दसे करते हैं और जिसके ग्रहण करनेसे ब्रह्म करामलकवत् जान पडता है, मनुष्य विक्षिप्तके तरह इधर उधर चित्तको दौडाते हैं और बहुत लोग यह विचारते हैं कि यह बडा कठिन है आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य शरीरसे जब ऐसा उत्तम श्रम न होगा तो जान पडता है कि रोगादिकसे शरीरके नाश होनेसे पीछे फिर जब पशुका जन्म होगा तब कुछ ईश्वरके जाननेमें श्रम करेंगे॥ १७॥

यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति निश्चितम् ।
तस्मिन् परिश्रमः कार्यः किमन्यच्छास्त्रभाषितम् १८

निश्चय जिसके जाननेसे सब संसार जाना जाता है ऐसे योगशास्त्रके जाननेमें परिश्रम करना अवश्य उचित है फिर अन्य शास्त्र जो कहे हैं उनका क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ प्रयोजन नहीं. तात्पर्य यह है कि पंडितलोग वृथा विवाद करके जो लोग सुमार्गमें जानेकी इच्छा करते हैं उनको भी भ्रष्ट कर देते हैं ॥ १८॥

योगशास्त्रमिदं गोप्यमस्माभिः परिभाषितम् ।
सुभक्ताय प्रदातव्यं त्रैलोक्ये च महात्मने ॥ १९ ॥

यह योगशास्त्र जो हमने कहा है सो परम गोपनीय है यह त्रैलोक्यमें महात्मा और अच्छे भक्तजनोंको देना उचित है. तात्पर्य यह है कि विना ईश्वरकी भक्तिके यह शुभकर्म सिद्ध नहीं होता न उधर चित्तकी वृत्ति जाती है इस हेतुसे अभक्तजनोंको देना उचित नहीं है ॥ १९ ॥

कर्मकाण्डं ज्ञानकाण्डमिति वेदो द्विधा मतः।
भवति द्विविधो भेदो ज्ञानकाण्डस्य कर्मणः ॥२०॥
द्विविधः कर्मकाण्डः स्यान्निषेधविधिपूर्वकः।
निषिद्धकर्मकरणे पापं भवति निश्चितम् ॥
विधिना कर्मकरणे पुण्यं भवति निश्चितम् ॥ २१ ॥

कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड वेदका दो मत हैं इसमें भी दो दो भेद कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डमें भया है उस कर्मकाण्डमें दो प्रकार हैं—एक निषेध दूसरा विधि, निषेध कर्म करनेसे निश्चय पाप होता है, विधान कर्म करनेसे निश्चय करके पुण्य होता है ॥

त्रिविधो विधिकूटः स्यान्नित्यनैमित्यकाम्यतः।
नित्येऽकृते किल्बिषंस्यात्काम्ये नैमित्तिके फलम् २२

विधि कर्ममें तीन प्रकारका भेद कहा है—नित्य १ नैमित्तिक २ सकाम ३। नित्यकर्म संध्या देवार्चन आदि न करनेसे पाप होता है। सकाम अर्थात् जो कर्म फलके इच्छासे किया जाता है और नैमित्तिक जो तीर्थोंमें पर्वादिकमें स्नानादिक करते हैं इनके न करनेसे पाप नही होता परन्तु करनेसे फल होता है ॥२२॥

द्विविधं तु फलं ज्ञेयं स्वर्गं नरकमेव च।
स्वर्गे नानाविधं चैव नरके च तथा भवेत् ॥ २३ ॥

फल दो प्रकारका होता है स्वर्ग और नरक, स्वर्ग नाना प्रकारका है ऐसेही नरकभी वहुत प्रकारका है. तात्पर्य यह है कि जैसा जो मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है वैसेही नरक वा स्वर्गमें जाता है ॥ २३ ॥

पुण्यकर्मणि वै स्वर्गो नरकं पापकर्मणि ।
कर्मबंधमयी सृष्टिर्नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ २४ ॥

पुण्यकर्म करनेसे स्वर्गमें जाता है और पापकर्मसे नरकमें जाता है, संसार कर्मसे निश्चय करके बंधा है, दूसरा हेतु नहीं है । तात्पर्य यह है कि जो ईश्वरको जानके कर्माकर्मसे अपनेको रहित समझेगा वह इस बंधसे छूट जायगा ॥ २४ ॥

जन्तुभिश्चानुभूयन्ते स्वर्गे नानासुखानि च ।
नानाविधानि दुःखानि नरके दुःसहानि वै ॥ २५ ॥

प्राणी स्वर्गमें नाना प्रकारके सुखका अनुभव करता है, ऐसेही बहुत प्रकारके दुःसह दुःख नरकमेंभी भोगता है ॥ २५ ॥

पापकर्मवशाद्दुःखं पुण्यकर्मवशात्सुखम् ।
तस्मात्सुखार्थी विविधं पुण्यं प्रकुरुते ध्रुवम् ॥ २६ ॥

पापकर्म करनेसे दुःख होता है और पुण्यकर्म करनेसे सुख होता है ॥ इस हेतुसे निश्चय करके सुखार्थी पुरुष नाना प्रकारका पुण्य करते हैं ॥ २६ ॥

पापभोगावसाने तु पुनर्ज्जन्म भवेत्खलु ।
पुण्यभोगावसाने तु नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ २७ ॥

पापका फल भोगनेके पीछे अवश्य फिर जन्म होता है, ऐसेही पुण्यफल भोगनेके अंतमें निश्चय फिर जन्म होता है अन्यथा नहीं होता ॥ २७ ॥

स्वर्गेऽपि दुःखसम्भोगः परस्त्रीदर्शनाद्ध्रुवम् ।
ततो दुःखमिदं सर्वं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ २८ ॥

स्वर्गमेंभी दुःख है इस कारणसे कि उस स्थानमें परस्त्रीका दर्शन अवश्य होता है। उसकी अप्राप्तिमें मानसिक व्यथा उत्पन्न होती है अन्यभी रागद्वेषादि बहुतसे कारण हैं कि प्राणीके चित्तको स्वर्गमेंभी स्थिर नहीं रहने देते इस हेतुसे संसारमें सिवाय दुःखके सुख नहीं है॥ २८॥

तत्कर्म कल्पकैः प्रोक्तं पुण्यपापमिति द्विधा।
पुण्यपापमयो बन्धो देहिनां भवति क्रमात्॥ २९॥

कल्पसूत्रादिकसे (बुद्धिमान लोगोंने) पुण्य और पाप दो प्रकारका कर्म कहा है इसी पुण्यपापसे शरीर बन्धायमान है अर्थात् वारंवार शरीर धारण करनेका कारण है॥ २९॥

इहामुत्र फलद्वेषी सफलं कर्म संत्यजेत्।
नित्यनैमित्तिके सङ्गं त्यक्त्वा योगे प्रवर्तते॥ ३०॥

इस लोकका भोग वा परलोकके फलकी इच्छा और नित्य नैमित्तिक आदि कर्मोंको फल सहित त्यागके योगाभ्यास अर्थात् परब्रह्मके विचारमें महात्मा जनोंको तत्पर रहना उचित है ३०

कर्मकाण्डस्य माहात्म्यं ज्ञात्वा योगी त्यजेत्सुधीः।
पुण्यपापद्वयं त्यक्त्वा ज्ञानकाण्डं प्रवर्तते॥ ३१॥

कर्मकाण्डके माहात्म्यको जानके योगीको उचित है कि पुण्य पाप दोनोंको तृणवत् विचारके त्याग दे और ज्ञानकाण्डमें तत्पर हो रहे॥ ३१॥

आत्मा वा रे च श्रोतव्यो मंतव्य इति यच्छ्रुतिः।
सा सेव्या तत्प्रयत्नेन मुक्तिदा हेतुदायिनी॥ ३२॥

यह श्रुतिका वाक्य है कि आत्माको सुनो और आत्माको मनन करो अर्थात् जो कुछ है सो आत्माही है सो श्रुति मुक्तिकी देनेवाली है यत्न करके सेवनेके योग्य है ॥ ३२ ॥

दुरितेषु च पुण्येषु यो धीवृत्तिं प्रचोदयात् ।
सोऽहं प्रवर्तते मत्तो जगत्सर्वं चराचरम् ॥ ३३ ॥
सर्वं च दृश्यते मत्तः सर्वं च मयि लीयते ।
न तद्भिन्नोऽहमस्मिन्नो यद्भिन्नो न तु किंचन॥ ३४ ॥

पाप पुण्य दोनोंमें समानरूपकी बुद्धिको जो वृत्ति प्रेरणा करती है सो हम हैं और हमसेही सब जगत् चराचर उत्पन्न है और जो देख पडता है वह सब हम हैं हममेंही सब लीन होता है न वह हमसे भिन्न है न हम उससे किंचित् मात्र भिन्न हैं. तात्पर्य यह है कि वह आत्मा जिससे यह जगत् उत्पन्न है हमसे भिन्न नहीं है इस हेतुसे इस संसारके स्थिति संहारकर्ता हम हैं ऐसी वृत्ति योगीकी रहती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

जलपूर्णेष्वसंख्येषु शरावेषु यथा भवेत् ।
एकस्य भात्यसंख्यत्वं तद्भेदोऽत्र न दृश्यते ॥ ३५ ॥
उपाधिषु शरावेषु या संख्या वर्तते परा ।
सा संख्या भवति यथा रवौ चात्मनि तत्तथा॥ ३६ ॥

जलसे भरा असंख्य शराव अर्थात् मृत्तिका आदिके पात्रमें एक सूर्यके अनेक प्रतिबिंब देख पडते हैं वास्तवमें भेद नहीं है जो भेद देख पडता है वह शरावके संख्याका भेद है जिस प्रकारसे शरावके संख्यासे सूर्यमें भेद जान पडता है उसी प्रकार

मायाकी उपाधिसे संसार भिन्न भिन्न जान पडता है वस्तुतः केवल एक ब्रह्मही है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

यथैकः कल्पकः स्वप्ने नानाविधतयेष्यते ।
जागरेऽपि तथाप्येकस्तथैव बहुधा जगत् ॥ ३७ ॥

जैसे स्वप्न अवस्थामें एकसे अनेक कल्पना होती हैं निद्रा-च्युत होजानेपर कुछ नही रहता उसी प्रकार मायाके आव-रणसे अनेक संसार जान पडते हैं जब ज्ञानरूपी खड्गसे मायाका पटल कट जाता है तब सिवाय शुद्ध ब्रह्मके और कुछ नहीं रह जाता ॥ ३७ ॥

सर्पबुद्धिर्यथा रज्जौ शुक्तौ वा रजतभ्रमः ।
तद्वदेवमिदं विश्वं विवृतं परमात्मनि ॥ ३८ ॥
रज्जुज्ञानाद्यथा सर्पो मिथ्यारूपो निवर्तते ।
आत्मज्ञानात्तथा याति मिथ्याभूतमिदं जगत् ॥३९॥
रौप्यभ्रान्तिरियं याति शुक्तिज्ञानाद् यथा खलु ।
जगद्भ्रान्तिरियं याति चात्मज्ञानाद्यथा तथा ॥ ४० ॥
यथा रज्जूरगभ्रान्तिर्भवेद्भेदवशाज्जगत् ॥ ४१ ॥
तथा जगदिदं भ्रान्तिरध्यासकल्पनाजगत् ।
आत्मज्ञानाद्यथा नास्ति रज्जुज्ञानाद्भुजङ्गमः ॥४२॥

जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति और सीपीमें चांदीकी भ्रान्ति होती है उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्ममें संसारकी झूठी भ्रान्ति होती है रस्सीके ज्ञान होनेसे झूठे सर्पका अभाव हो जाता है उसी तरह आत्मज्ञान होनेसे यह संसार नहीं रह जाता, सीपीकोभी

अच्छीतरह निश्चय जान लेनेसे चांदीकी भ्रान्ति दूर हो जाती है वैसेही आत्मज्ञान होनेसे जगत्की भ्रान्ति दूर होती है जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति होती है उसी तरह आत्मामें अध्यास-कल्पना मात्र जगत्की भ्रान्ति है रज्जुवत् ज्ञान होनेसे फिर जगत्का तीनों कालसे अभाव हो जाता है ॥ ३८–४२ ॥

यथा दोषवशाच्छुक्लः पीतो भवति नान्यथा ।
अज्ञानदोषादात्मापि जगद्भवति दुस्त्यजम् ॥ ४३ ॥
दोषनाशे यथा शुक्लो गृह्यते रोगिणा स्वयम् ।
शुक्लज्ञानात्तथाज्ञाननाशादात्मा तथा कृतः ॥ ४४ ॥

जैसे मनुष्यको कवलकी व्याधि अर्थात् पित्तादिकके दोषसे सब वस्तु निश्चय पीतवर्ण देख पडती है उसी प्रकार अज्ञान-रूपी दोषसे शुद्ध आत्मा नहीं प्रतीत होता है परन्तु यह झूठा संसार देख पडता है ऐसा अज्ञान बडे कष्टसे दूर होता है जैसे पित्तादिक दोषके नाश होनेसे फिर यथार्थ देख पडता है उसी प्रकार अज्ञान दूर होनेसे शुद्ध ब्रह्म निर्विकार जान पडता है. तात्पर्य यह है कि मनुष्यके पीछे एक अज्ञानकी व्याधि बहुत बडी लगी है इसकी औषधि आत्मज्ञान है यह बात निश्चय है कि व्याधि विना औषधिके दूर नहीं होती ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

कालत्रयेऽपि न यथा रज्जुः सर्पो भवेदिति ।
तथात्मा न भवेद्विश्वं गुणातीतो निरञ्जनः ॥ ४५ ॥

जिस तरह रस्सी तीनों कालमें सर्प नहीं हो सकती उसी तरह आत्माभी तीनों कालमें कदापि संसारी नहीं हो सकता

अर्थात् नहीं है इस हेतुसे कि आत्मा गुणातीत है अर्थात् गुणसे रहित है ॥ ४५ ॥

आगमाऽपायिनोऽनित्या नाश्यत्वे नेश्वरादयः।
आत्मबोधेन केनापि शास्त्रादेतद्विनिश्चितम् ॥ ४६ ॥

वह शास्त्र जिसमें आत्मबोधका निरूपण किया है उससे निश्चय है कि इन्द्रादि देवताभी जो ईश्वर कहे जाते हैं नित्य भावसे रहित हैं अर्थात् उनकाभी जनम मरण होता है ॥ ४६ ॥

यथा वातवशात्सिन्धावुत्पन्नाः फेनबुद्बुदाः।
तथात्मनि समुद्भूतं संसारं क्षणभङ्गुरम् ॥ ४७ ॥

जैसे वायुके उपाधिसे समुद्रमें फेन और बुदबुदा उत्पन्न होता है क्षणभरमें फिर उसीमें लय हो जाता है तैसेही आत्मासे संसार मायाके उपाधिसे क्षणभंगी उत्पन्न होता है फिर उसीमें लय हो जाता है ॥ ४७ ॥

अभेदो भासते नित्यं वस्तुभेदो न भासते।
द्विधात्रिधादिभेदोऽयं भ्रमत्वे पर्यवस्यति ॥ ४८ ॥

परमात्माका संसारसे सदा अभेद है और किसी वस्तुमें भेद नहीं है एक दो तीन ऐसा जो वस्तुका भेद जान पडता है वह भ्रमका कारण है ॥ ४८ ॥

यद्भूतं यच्च भाव्यं वै मूर्तामूर्तं तथैव च।
सर्वमेव जगदिदं विवृतं परमात्मनि ॥ ४९ ॥

जो भया है और जो होगा मूर्तिमान् वा अमूर्तिमान् यह सब जगत् आत्मासे मिला है अर्थात् उससे भिन्न नहीं है ४९॥

कल्पकैः कल्पिता विद्या मिथ्या जाता मृषात्मिका।
एतन्मूलं जगदिदं कथं सत्यं भविष्यति ॥ ५० ॥

यह संसार मिथ्याभूत अविद्याकल्पनासे कल्पित भया है बडे आश्चर्यकी बात है कि जिसकी जड मिथ्या है वह आप कब सत्य हो सकता है अर्थात् सब झूठ है ॥ ५० ॥

चैतन्यात् सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम्।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य चैतन्यं तु समाश्रयेत्॥५१॥

केवल एक चैतन्य ब्रह्मसे जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज आदि सकल चराचर संसार उत्पन्न भया है इस हेतुसे सबको त्यागके केवल उसी एक चैतन्य आत्माके आसरे होना उचित है क्योंकि वही चैतन्य सबका कारण है ॥ ५१ ॥

घटस्याभ्यन्तरे बाह्ये यथाकाशं प्रवर्तते।
तथात्माभ्यन्तरे बाह्ये ब्रह्माण्डस्य प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

जैसे घटके भीतर बाहर आकाश व्याप्त है तैसेही इस ब्रह्माण्डके भीतर बाहर आत्मा परिपूर्ण व्याप्त है ॥ ५२ ॥

सततं सर्वभूतेषु यथाकाशं प्रवर्तते।
तथात्माभ्यंतरे बाह्ये ब्रह्माण्डस्य प्रवर्तते ॥ ५३ ॥
वर्तते सर्वभूतेषु यथाकाशं समन्ततः।
तथात्माभ्यंतरे बाह्ये कार्यवर्गेषु नित्यशः ॥ ५४ ॥

जिस प्रकार आकाश सब चराचरमें व्याप्त हैं उसी तरह आत्माभी इस जगत्‌में व्याप्त है अर्थात् आकाशवत् सब वस्तुमें आत्मा परिपूर्ण व्याप्त है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

असंलग्नं यथाकाशं मिथ्याभूतेषु पंचसु ।
असंलग्नस्तथात्मा तु कार्यवर्गेषु नान्यथा ॥ ५५ ॥

जिस तरह आकाश सब वस्तुमें मिला है और सबसे अलग है उसी तरह परमात्मा सब वस्तु चराचरमें व्याप्त है. और सबसे अलग है ॥ ५५ ॥

ईश्वरादिजगत्सर्वमात्मव्याप्तं समन्ततः ।
एकोऽस्ति सच्चिदानन्दः पूर्णो द्वैतविवर्जितः ॥५६॥

ब्रह्मा आदि सब जगत्में वही एक आत्मा परिपूर्ण व्याप्त है वह एक सच्चिदानन्द परिपूर्ण द्वैतरहित है अर्थात् दूसरा कुछ नहिं है ॥ ५६ ॥

यस्मात्प्रकाशको नास्ति स्वप्रकाशो भवेत्ततः ।
स्वप्रकाशो यतस्तस्मादात्मा ज्योतिःस्वरूपकः॥५७

जिसका कोई प्रकाशक नही है वह आपही प्रकाशमान है जो आपही प्रकाशमान है वह आत्मा ज्योतिःस्वरूप है ॥५७॥

अवच्छिन्नो यतो नास्ति देशकालस्वरूपतः ।
आत्मनः सर्वथा तस्मादात्मा पूर्णो भवेत्खलु ॥५८॥

देशकरके वा कालके प्रमाणसे वह परिछिन्न नहीं है अर्थात् उसका विस्तार नहीं है न उसमें कालका नियम है इस हेतुसे आत्मा सर्वथा निश्चय परिपूर्ण है ॥ ५८ ॥

यस्मान्न विद्यते नाशः पंचभूतैर्वृथात्मकैः ।
तस्मादात्मा भवेन्नित्यस्तन्नाशो न भवेत्खलु ॥ ५९॥

यह जो मिथ्या पंचभूत हैं इनसे उसका नाश नही है

इस कारणसे आत्मा नित्य है और यह निश्चय है कि उसका कभी नाश नही होता ॥ ५९ ॥

यस्मात्तदन्यो नास्तीह तस्मादेकोऽस्ति सर्वदा ।
यस्मात्तदन्यो मिथ्या स्यादात्मा सत्यो भवेत्खलु६०

जब दूसरा कुछ नहीं है तो एक वही सर्वदा अद्वैत है जब उसके सिवाय अर्थात् उससे अन्य सब मिथ्या है तो वही एक शुद्ध आत्मा सत्य है ॥ ६० ॥

अविद्याभूते संसारे दुःखनाशे सुखं यतः ।
ज्ञानादाद्यंतशून्यं स्यात्तस्मादात्मा भवेत्सुखम् ६१॥

यह संसार अविद्यासे उत्पन्न भया है इसके दुःखका नाश होनेपर सुख होता है और ज्ञानसे दुःखका आदि अंत शून्य है इस हेतुसे निश्चय आत्मा सुखस्वरूप है ॥ ६१ ॥

यस्मान्नाशितमज्ञानं ज्ञानेन विश्वकारणम् ।
तस्मादात्मा भवेत् ज्ञानं ज्ञानं तस्मात्सनातनम्६२

जिसकरके अज्ञान नाश होता है और यह जान पडता है कि ज्ञानही संसारका कारण है सोई आत्मज्ञान है और ज्ञानही नित्य है ॥ ६२ ॥

कालतो विविधं विश्वं यदा चैव भवेदिदम् ।
तदेकोऽस्ति स एवात्मा कल्पनापथवर्जितः ॥ ६३॥

काल पायके अनेक प्रकारका संसार उत्पन्न होता है सो वह एक आत्मा है उसमें कल्पनापथ वर्जित है अर्थात् कल्पना नहीं हो सकती ॥ ६३ ॥

बाह्यानि सर्वभूतानि विनाशं यान्ति कालतः।
यतो वाचो निवर्त्तन्ते आत्मा द्वैतविवर्जितः॥ ६४॥

आत्मासे जो अतिरिक्त वस्तु उत्पन्न है वह काल पायके नाश हो जाती है आत्मा द्वैतरहित है अर्थात् एक है इसका वर्णन नहीं हो सकता; तात्पर्य यह है कि यावत् वस्तु उत्पन्न होती हैं उसको काल खा जाता है परंतु आत्मामें कालकाभी नाश होजाता है॥ ६४॥

न खं वायुर्न चाग्निश्च न जलं पृथिवी न च।
नैतत्कार्यं नेश्वरादि पूर्णैकात्मा भवेत्खलु॥ ६५॥

वह आकाश नहीं है इस हेतुसे कि उसमें शब्द नहीं है, वायु नही है क्योंकि उसमें स्पर्श नहीं है, अग्नि नहीं है क्योंकि उसमें तेज भाव नहीं है, जल नही है क्योंकि उसमें रस नहीं है, वह पृथ्वी नही है क्योंकि गन्धरहित है, वह कार्य नहीं है क्योंकि उसका कारण नहीं है, वह ब्रह्मा इन्द्र आदि ईश्वर नही है इस हेतुसे कि उसका नाश नही होता। अर्थात् वह आत्मा न आकाश न वायु न अग्नि न जल न पृथ्वी कुछ नहीं है निश्चय केवल एक परिपूर्ण है॥ ६५॥

आत्मानमात्मना योगी पश्यत्यात्मनि निश्चितम्।
सर्वसंकल्पसंन्यासी त्यक्तमिथ्याभवग्रहः॥ ६६॥

यह मिथ्या संसाररूपी गृहको त्यागके सर्व संकल्पसे रहित होके योगी आत्मासे आत्माको आत्मामें देखता है॥ ६६॥

आत्मनात्मनि चात्मानं दृष्ट्वानन्तं सुखात्मकम् ।
विस्मृत्य विश्वं रमते समाधेस्तीव्रतस्तथा ॥ ६७ ॥

संसार विस्मृत्य करके अर्थात् भुलाके आत्मासे आत्माको आत्मारूप होके देखता और आत्माके आनन्द सुखरूपी तीव्र-समाधिमें योगी रमण करता है ॥ ६७ ॥

मायैव विश्वजननी नान्या तत्त्वधिया परा ।
यदा नाशं समायाति विश्वं नास्ति तदा खलु ॥६८॥

माया संसारकी माता है अर्थात् मायासेही संसार उत्पन्न भया है यह निश्चय है कि, दूसरा हेतु इस जगत्के उत्पत्तिका नहीं है ज्ञान करके इस मायाके नाश होनेसे संसारका अभाव निश्चय जान पडता है ॥ ६८ ॥

हेयं सर्वमिदं यस्य मायाविलसितं यतः ।
ततो न प्रीतिविषयस्तनुवित्तसुखात्मकः ॥ ६९ ॥

यह झूठा मायाका प्रपंच विषयसुख धन शरीर है इनमें प्रीति करना उचित नही है यह सब त्यागनेके योग्य है ॥६९॥

अरिर्मित्रमुदासीनस्त्रिविधं स्यादिदं जगत् ।
व्यवहारेषु नियतं दृश्यते नान्यथा पुनः ।
प्रियाप्रियादिभेदस्तु वस्तुषु नियतस्फुटम् ॥ ७० ॥

शत्रु मित्र उदासीन यही तीन प्रकारके व्यवहारका प्रवाह इस संसारमें निश्चय दीख पडता है और प्रिय अप्रिय यही दो भेदसे जगत् बंधा है ॥ ७० ॥

आत्मोपाधिवशादेवं भवेत् पुत्रादि नान्यथा ॥७१॥

मायाविलसितं विश्वं ज्ञात्वैवं श्रुतियुक्तितः।
अध्यारोपापवादाभ्यां लयं कुर्वन्ति योगिनः॥ ७२॥

आत्माके उपाधिसे पिता पुत्रादि होते हैं यह जगत् मायासे विलसित है यह श्रुतिप्रमाणसे जानके योगी लोग अध्यारोप अपवादसे आत्मामें लय करते हैं अर्थात् शुद्ध चैतन्यका मनन करते हैं॥ ७१॥ ७२॥

कर्मजन्यं विश्वमिदं नत्वकर्माणि वेदना।
निखिलोपाधिहीनो वै यदा भवति पूरुषः।
तदा विजयतेऽखण्डज्ञानरूपी निरञ्जनः॥ ७३॥

इस जगत्की स्थिति कर्मसे है अर्थात् सुख दुःख जन्म मरण आदि क्लेशोंका कारण कर्मही है अकर्म हो जानेसे फिर कुछ दुःख नहीं है यावत् मायाके उपाधिको जब पुरुष जीतके उससे रहित हो जाता है तब अखंड ज्ञानरूपी निरंजनका भान होताहै ७३

सो हि कामयते पुरुषः सृजते च प्रजाः स्वयम्।
अविद्या भासते यस्मात्तस्मान्मिथ्या स्वभावतः॥७४

आत्मा अपनी इच्छासे जगत् सृजता अर्थात् उत्पन्न करता है यह इच्छा अविद्याका कार्य है अविद्या नाम मिथ्याका है तो जब इच्छाही मिथ्या मायासे उत्पन्न है तो उस इच्छाका कार्य कब सत्य हो सकता है? तात्पर्य यह है कि मायाके उपाधिसे आत्माका यह इच्छाभूत संसार मनोराज्यवत् है जैसे मनुष्यका मनोराज्य मिथ्या है उसी प्रकार आत्माका इच्छाभूत यह जगत्भी मिथ्या है॥ ७४॥

शुद्धे ब्रह्मणि संबद्धो विद्यया सहजो भवेत्।
ब्रह्मतेजोंऽशतो याति तत आभासते नभः ॥ ७५ ॥

शुद्धब्रह्ममें ज्ञानरूपी विद्याका संबन्ध है उस ब्रह्मके तेज अंशसे आकाश उत्पन्न भया ॥ ७५ ॥

तस्मात्प्रकाशते वायुर्वायोरग्निस्ततो जलम्।
प्रकाशते ततः पृथ्वी कल्पनेयं स्थिता सति ॥७६॥
आकाशाद्वायुराकाशः पवनादग्निसंभवः।
खवाताग्नेर्जलं व्योमवाताग्नेर्वारितो मही ॥ ७७ ॥

आकाशसे वायु उत्पन्न भया वायुसे अग्नि उत्पन्न भया, अग्निसे जल भया, जलसे पृथ्वी उत्पन्न भई यह कल्पना है। आकाशसे वायु उत्पन्न भया और आकाशवायुसे तेज उत्पन्न भया और आकाशवायु अग्निसे जल उत्पन्न भया और इन चारोंसे पृथ्वी उत्पन्न भई ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

खं शब्दलक्षणं वायुश्चञ्चलः स्पर्शलक्षणः।
स्याद्रूपलक्षणं तेजः सलिलं रसलक्षणम् ॥ ७८ ॥
गन्धलक्षणिका पृथ्वी नान्यथा भवति ध्रुवम्।
विशेषगुणा स्फुरति यतः शास्त्रादिनिर्णयः ॥ ७९ ॥
शब्दैकगुणमाकाशं द्विगुणो वायुरुच्यते।
तथैव त्रिगुणं तेजो भवन्त्यापश्चतुर्गुणाः ॥ ८० ॥
शब्दःस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।
एतत्पंचगुणा पृथ्वी कल्पकैः कल्प्यतेऽधुना॥८१॥

शब्दगुण आकाशका है और चंचल स्पर्श दो गुण वायुके

हैं, रूपगुण तेजका है, रसगुण जलका है और पृथ्वीका गुण गंध है। इन पांच तत्त्वोंमें यह गुण जो ऊपर कहा है विशेष है यह शास्त्रसे निर्णय भया है अन्यथा निश्चय नहीं है। आकाशमें एक शब्दगुण है, वायुमें दो गुण हैं, अग्निमें तीन गुण हैं और जलमें चार गुण हैं पृथ्वीमें शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह पांच गुण कल्पित हैं ॥ ७८-८१ ॥

चक्षुषा गृह्यते रूपं गन्धो घ्राणेन गृह्यते ॥ ८२ ॥
रसो रसनया स्पर्शस्त्वचा संगृह्यते परम् ।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दो नियतं भाति नान्यथा ॥ ८३ ॥

नेत्र रूपको ग्रहण करता है और नासिका गंध ग्रहण करती है और जिह्वासे रस ग्रहण होता है और स्पर्श त्वचा अर्थात् शरीरके चर्मसे ग्रहण होता है वा बोध होता है और शब्द कर्णसे ग्रहण होता है यह निश्चय है इसमें अन्यथा नहीं है ८३॥

चैतन्यात्सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ।
अस्ति चेत्कल्पनेयं स्यान्नास्ति चेदस्ति चिन्मयम् ॥

सब जगत् चराचर उसी एक चैतन्यसे उत्पन्न भया है यदि संसार सत्य माना जाय तो इस प्रकारसे कल्पना भई है और जो संसारका अभाव है अर्थात् नहीं है तो वही एक चैतन्य आत्मा है और कुछ नहीं है ॥ ८४ ॥

पृथ्वी शीर्णा जले मग्ना जलं मग्नं च तेजसि ।
लीनं वायौ तथा तेजो व्योम्नि वातो लयं ययौ ।
अविद्यायां महाकाशो लीयते परमे पदे ॥ ८५ ॥

पृथ्वी जलमें मग्न अर्थात् लय हो जाती है, जल अग्निमें लयभावको प्राप्त होता है और अग्निवायुमें लय हो जाता है और वायु आकाशमें लीन हो जाता है और आकाश अविद्यामें लय-भावको प्राप्त हो जाता है और यह अविद्या मायाभी परमप-दको पहुँच जाती है अर्थात् आत्मामें लय हो जाती है ।तात्पर्य यह है कि, जो उत्पन्न भया है उसका अवश्य नाश है ॥८५॥

विक्षेपावरणाशक्तिर्दुरन्ता दुःखरूपिणी ।
जडरूपा महामाया रजःसत्त्वतमोगुणा ॥ ८६ ॥
सा मायावरणाशक्त्यावृता विज्ञानरूपिणी ।
दर्शयेज्जगदाकारं तं विक्षेपस्वभावतः ॥ ८७ ॥

ईश्वरकी यह दो शक्ति विक्षेप और आवरण है,इनका अंत नही है, यह महामाया दुःखरूपिणीमें रज सत तम तीनों गुण हैं, समय समयपर इन गुणोंको धारण कर लेती है सो माया आवरण शक्ति ज्ञानको आवृत्त करके अर्थात् छिपाके अज्ञान रूपिणी हो जाती है और संसारके आकारको देखाती है यह विक्षेप करना उसका स्वभाव है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

तमोगुणात्मिका विद्या या सा दुर्गा भवेत्स्वयम् ।
ईश्वरं तदुपहितं चैतन्यं तदभूद्ध्रुवम् ॥ ८८ ॥
सत्त्वाधिका च या विद्या लक्ष्मीः स्याद्दिव्यरूपिणी ।
चैतन्यं तदुपहितं विष्णुर्भवति नान्यथा ॥ ८९ ॥
रजोगुणाधिका विद्या ज्ञेया सा वै सरस्वती ।
यश्चित्स्वरूपो भवति ब्रह्मा तदुपधारकः ॥ ९० ॥

माया जब तमोगुण धारण करती है तब दुर्गारूप होके चैतन्य ईश्वरको उत्पन्न करती है और जब सतोगुणको धारण करती है तब लक्ष्मीरूप होके चैतन्य जो विष्णु है उनको उत्पन्न करती है जब रजोगुणको धारण करती है तब सरस्वतीरूप होके चैतन्य जो ब्रह्मा हैं उनको उत्पन्न करती है अर्थात् सबके उत्पत्तिका कारण यही जगन्माता महामाया है ॥ ८८-९० ॥

ईशाद्याः सकला देवा दृश्यन्ते परमात्मनि ।
शरीरादिजडं सर्वं सा विद्या तत्तथा तथा ॥ ९१ ॥
एवंरूपेण कल्पन्ते कल्पका विश्वसम्भवम् ।
तत्त्वातत्त्वं भवन्तीह कल्पनान्येन नोदिता ॥ ९२ ॥

हमारे आदि सकल देवता उसी एक परमात्मामें देख पडते हैं और शरीर आदि सब जड पदार्थ उसी एक विद्या अर्थात् आत्मामें भिन्न भिन्न जान पडते हैं इसी तरह बुद्धिमान् लोगोंने संसारके स्थितिकी कल्पना की है कि तत्त्व अतत्त्व दोनों भया है अर्थात् आत्मासेही सब सृष्टिकी उत्पत्ति है केवल कल्पनामात्र है और कुछ किसीने कहा नहीं है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

प्रमेयत्वादिरूपेण सर्वं वस्तु प्रकाश्यते ।
तथैव वस्तु नास्त्येव भासको वर्तकः परः ॥ ९३ ॥
स्वरूपत्वेन रूपेण स्वरूपं वस्तु भाष्यते ।
विशेषशब्दोपादाने भेदो भवति नान्यथा ॥ ९४ ॥

प्रमेयरूप अर्थात् यावत् वस्तु संसारमें दृश्यमान है वह सबके प्रकाशका कारण वही एक आत्मा है, उपाधिभेदसे भिन्न भिन्न

स्वरूप देख पडता है, विशेष करके नामभेदसे भेद हैं अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय दोनों वही है और कुछ नहीं है ॥ १३ ॥ १४॥

एकः सत्तापूरितानन्दरूपः पूर्णो व्यापी वर्तते नास्ति किञ्चित्। एतज्ज्ञानं यः करोत्येव नित्यं मुक्तः स स्यान्मृत्युसंसारदुःखात् ॥ १५ ॥

एक सत्तामानपूरित आनन्दस्वरूप परिपूर्ण व्यापी सर्वदा वर्त्तमान है और दूसरा कुछ नहीं है ऐसा ज्ञान जिसको है और सर्वदा वह यही मनन करता है सो मुक्त है अर्थात् संसारके जन्ममरण आदि दुःखसे वह रहित है ॥ १५ ॥

यस्यारोपापवादाभ्यां यत्र सर्वे लयं गताः।
स एको वर्तते नान्यत् तच्चित्तेनावधार्यते ॥१६॥

जहां ज्ञानद्वारा संसारके कार्योंका लय हो जाता है अर्थात् उससे अभेद हो जाते हैं उसी एक सर्वदा वर्तमान आत्मामें मनको लय अर्थात् आत्माकाही ध्यान धारण करे ॥ १६ ॥

पितुरन्नमयात्कोषाज्जायते पूर्वकर्मणः।
शरीरं वै जडं दुःखं स्वप्राग्भोगाय सुन्दरम् ॥ १७ ॥

पूर्व कर्मके अनुसार प्राणी पिताके अन्नमय कोशसे दुःख भोगनेके कारण जड शरीर सुन्दर भोगरूप उत्पन्न होता है १७

मांसास्थिस्नायुमज्जादिनिर्मितं भोगमन्दिरम्।
केवलं दुःखभोगाय नाडीसंततिगुम्फितम् ॥ १८ ॥

मांस अस्थि स्नायु मज्जा आदि नाडियोंसे बंधा हुआ यह भोगमन्दिर अर्थात् शरीर केवल :खका कारण है तात्पर्य-

यह है कि ऐसा शरीर जिसके उत्पत्ति स्थितिके स्मरण कर-नेसे घृणा होती है उससें व्यर्थ मनुष्य मायामें फँसके मोह और अभिमान करता है ॥ ९८ ॥

पारमैष्ठ्यमिदं गात्रं पञ्चभूतविनिर्मितम् ।
ब्रह्माण्डसंज्ञकं दुःखसुखभोगाय कल्पितम् ॥ ९९ ॥

यह शरीर ब्रह्माके द्वारा पंचभूतसे निर्मित ब्रह्मांडसंज्ञा सुख दुःख भोगनेके हेतु कल्पित है ॥ ९९ ॥

बिन्दुः शिवो रजः शक्तिरुभयोर्मिलनात् स्वयम् ।
स्वप्नभूतानि जायन्ते स्वशक्त्या जडरूपया॥१००

शिवरूप बिन्दु और शक्तिरूप रज इन दोनोंके संबन्धसे ईश्वरकी शक्ति जडरूपा महामाया अपने प्रभुतासे शरीरोंको उत्पन्न करती है ॥ १०० ॥

तत्पञ्चीकरणात्स्थूलान्यसंख्यानि चराचरम् ॥ १०१
ब्रह्माण्डस्थानि वस्तूनि यत्र जीवोऽस्ति कर्मभिः
तद्भूतपञ्चकात्सर्वं भोगाय जीवसंज्ञिता ॥ १०२॥

उसी पंचीकरणसे अनेक स्थूल वस्तु इस संसारमें चराचर उत्पन्न होते हैं यह जीवभी अपने कर्मके अनुसार भोग भोग-नेके हेतु उसी पांच भूतसे जीवसंज्ञा करके प्रगट होताहै ॥१०२॥

पूर्वकर्मानुरोधेन करोमि घटनामहम् ।
अजडः सर्वभूतान्वै जडस्थित्या भुनक्ति तान् १०३

ईश्वर कहते हैं कि प्राणीको पूर्व कर्मके अनुसार हम उत्पन्न करते हैं और सर्व भूतोंसे हम अजड अर्थात् भिन्न और अवि-

नाशी हैं परंतु जडरूप होके सबको हम खा जाते हैं अर्थात् सबका नाश करते हैं ॥ १०३ ॥

जडात्स्वकर्मभिर्बद्धो जीवाख्यो विविधो भवेत् ।
भोगायोत्पद्यते कर्म ब्रह्माण्डाख्ये पुनः पुनः ।
जीवश्च लीयते भोगावसाने च स्वकर्मणः ॥ १०४॥

जीव अपने कर्ममें बंधके नाना प्रकारके जड शरीर धारण करता है और अपने कर्मके फल भोगनेके हेतु संसारमें वारंवार उत्पन्न होता है और सब कर्मोंके अवसानमें अर्थात् जब ज्ञानद्वारा सब कर्मोंसे रहित हो जाता है तब उसी ज्ञानस्वरूप आत्मामें लय हो जाता है ॥ १०४ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे लयप्रकरणे प्रथमपटलः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपटलः २.

तत्त्वज्ञानोपदेश.

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ।
सरितः सागराः शैला क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥ १ ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवता ॥ २ ॥

प्राणीके इस शरीरमें सप्तद्वीपसहित सुमेरु है और नदी समुद्र आदि पर्वत और क्षेत्र क्षेत्रपाल ऋषि मुनि और सब नक्षत्र ग्रह पुण्यतीर्थ और पीठ देवता आदि सब इसी शरीरमें वर्तमान हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य तीर्थोंमें स्नान दर्शनके हेतु भटकता

फिरता है परंतु इस शरीरस्थ तीर्थ और देवताको नहीं जानता न मनको शुद्धकरके उनके जाननेमें प्रयास करता है ॥ १ ॥ २ ॥

सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥ ३ ॥

सृष्टिके स्थिति संहारके करता चन्द्रमा और सूर्य इस शरीरमें भ्रमण करते हैं और आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी अर्थात् पांचो तत्त्व सर्वदा शरीरमें वर्तमान रहते हैं। तात्पर्य यह है कि- सब इसी शरीरमें हैं परंतु विना गुरुकी कृपाके देख नहीं पडते ३

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते ।
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ॥ ४ ॥

जो त्रैलोक्यमें चराचर वस्तु हैं सो सब इसी शरीरमें मेरुके आश्रय होके सर्वत्र अपने २ व्यवहारको वर्तते हैं जो मनुष्य यह सब जानता है सो योगी है इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥

ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः ।
मेरुशृङ्गे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः ॥ ५ ॥

यह शरीर ब्रह्माण्डसंज्ञा है जिसतरह संसारमें सब देश और सुमेरु पर्वत है उसी तरह शरीरमें मेरु है उसके ऊपर सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा आठ कलासे स्थित है ॥ ५ ॥

वर्ततेऽहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः ।
ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं यथा च वै ॥ ६ ॥

इडामार्गेण पुष्टयर्थं याति मन्दाकिनी जलम् ।
पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम् ॥ ७ ॥

सोई चन्द्रमा रात्रि दिवस अधोमुख होके अमृतकी वर्षा करते हैं वह अमृत सूक्ष्म दो भाग हो जाता है सो मन्दाकिनीके जलके समान देहके रक्षार्थ इडा जो वाम नाडी है उसके रन्ध्रसे सकल शरीरको पोषण करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

एष पीयूषरश्मिर्हि वामपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ ८ ॥
अपरः शुद्धदुग्धाभो हठात्कर्षति मण्डलात् ।
रन्ध्रमार्गेण सृष्टयर्थं मेरौ संयाति चन्द्रमाः ॥ ९ ॥

वही सुधाकिरण संयुक्त इडा नाडीकी स्थिति वाम भागमें है और शुद्ध दूधके समान मेरुपर चन्द्रमा प्रसन्नतापूर्वक अपने मण्डलसे इडाके रन्ध्रमार्गसे आयके देहीका पोषण करते हैं ८-९

मेरुमूले स्थितः सूर्यः कलाद्वादशसंयुतः ।
दक्षिणे पथि रश्मिभिर्वहत्यूर्ध्वं प्रजापतिः ॥ १० ॥

मेरुदण्डके मूलमें अर्थात् नीचे बारह कला संयुक्त सूर्य स्थित है दक्षिणपथ अर्थात् पिङ्गला नाडीद्वारा प्रजापति स्वरूपकी गति ऊपरको है ॥ १० ॥

पीयूषरश्मिनिर्यासं धातूंश्च ग्रसति ध्रुवम् ।
समीरमण्डले सूर्यो भ्रमते सर्वविग्रहे ॥ ११ ॥

सूर्य अमृतधातुको अपने किरण शक्तिसे ग्रास कर जाता है और वायुमण्डलके साथ सब शरीरमें भ्रमण करता है ॥ ११

एषा सूर्यपरा मूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे पथि ।
वहते लग्नयोगेन सृष्टिसंहारकारकः ॥ १२ ॥

यह सूर्यकी अपर निर्वाण मूर्ति है अर्थात् पिङ्गला नाडी दक्षिण भागमें स्थित है । सूर्य सृष्टि संहार करता लग्नयोगसे नाडीद्वारा प्रवाह करते हैं ॥ १२ ॥

सार्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम् ।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥ १३ ॥
सुषुम्णेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्वका ।
कुहू सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी ॥ १४ ॥
वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशास्विनी ।
एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिङ्गलेडा सुषुम्णिका ॥ १५ ॥

शरीरमें बहुत नाडियाँ हैं परंतु उनमें प्रधान नाडियां साढे तीन लक्ष हैं उसमेंसे मुख्य यह चौदह नाडियाँ १ सुषुम्णा २-इडा ३ पिंगला ४ गान्धारी ५ हस्तिजिह्वा ६ कुहू ७ सरस्वती ८ पूषा ९ शंखिनी १० पशास्विनी ११ वारुणा १२-अलंबुषा १३ विश्वोदरी १४ यशास्विनी इन चौदहनेभी तीन नाडियाँ मुख्य हैं इडा, पिंगला, सुषुम्णा ॥ १३ ॥ १४ १५॥

तिसृष्वेका सुषुम्णैव मुख्या सा योगिवल्लभा ।
अन्यास्तदाश्रयं कृत्वा नाड्यः सन्ति हि देहिनाम् १६

इडा, पिंगला,सुषुम्णा इन तीन नाडियोंमेंभी एकही सुषुम्णा मुख्य है इस कारणसे कि परंपदकी दाता है योगी लोगोंको हितकारी है अन्य नाडियाँ इसके आश्रय शरीरमें रहतीं हैं १६

नाड्यस्तु ता अधोवदनाः पद्मतन्तुनिभाः स्थिताः ।
पृष्ठवंशं समाश्रित्य सोमसूर्याग्निरूपिणी ॥ १७ ॥

यह तीनों नाडियाँ अधोवदना हैं अर्थात् नीचेको मुख कमलतन्तुके सदृश हैं और चन्द्र सूर्य अग्निके समान हैं अर्थात् इडा चन्द्ररूप और पिंगला सूर्यरूप और सुषुम्णा अग्निरूप है यह तीनों नाडियाँ मेरुदंडक आश्रय स्थित हैं ॥ १७ ॥

तासां मध्ये गता नाडी चित्रा सा मम वल्लभा ।
ब्रह्मरन्ध्रं च तत्रैव सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं शुभम् ॥ १८ ॥

उस तीनों नाडियोंके मध्यमें अर्थात् रंध्रमें जो चित्रा नाडी है वह हमको प्रिय है उसी स्थानमें बहुत सूक्ष्म ब्रह्मरंध्र शोभायमान है ॥ १८ ॥

पञ्चवर्णोज्ज्वला शुद्धा सुषुम्णा मध्यचारिणी ।
देहस्योपाधिरूपा सा सुषुम्णा मध्यरूपिणी ॥ १९ ॥

वह चित्रनाडी पंचवर्ण अति उज्ज्वल शुद्ध है और देहके उपाधिका कारणभी वही सुषुम्णान्तर्गत अर्थात् चित्रानाडी है तात्पर्य यह है कि आत्मस्वरूप वही है ॥ १९ ॥

दिव्यमार्गमिदं प्रोक्तममृतानन्दकारकम् ।
ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो दुरितौघं विनाशयेत् ॥ २० ॥

वह मार्ग बहुत श्रेष्ठ अमृतानन्दकारक मुक्तिका दाता हमने कहा है जिसके ध्यानमात्रसे योगी लोगोंके पापका समूह नाश हो जाता है ॥ २० ॥

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात्तु द्व्यङ्गुलादधः ।
चतुरङ्गुलविस्तारमाधारं वर्तते समम् ॥ २१ ॥

गुदासे दो अंगुल ऊपर और मेढ्रसे दो अंगुल नीचे मध्यमें चार अंगुल विस्तार आधारपद्म है ॥ २१ ॥

तस्मिन्नाधारपद्मे च कर्णिकायां सुशोभना।
त्रिकोणा वर्त्तते योनिः सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ २२ ॥

उस आधारपद्मके कर्णिकामें अर्थात् डंडीमें त्रिकोणयोनि है यह योनि सब तंत्रोंकरके गोपित है अर्थात् इसके प्रकाश करनेकी आज्ञा किसी शास्त्रमें नहीं है ॥ २२ ॥

तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता।
सार्द्धत्रिकारा कुटिला सुषुम्णामार्गसंस्थिता ॥ २३ ॥

उसी स्थानमें कुण्डलनी देवता साढे तीन आवृत कुटिला अर्थात् टेढी जिसकी प्रभा विद्युत्के समान है सुषुम्णाके मार्गमें स्थित है ॥ २३ ॥

जगत्संसृष्टिरूपा सा निर्माणे सततोद्यता।
वाचामवाच्या वाग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता ॥ २४ ॥

सोई कुण्डलनी जगत्के बहुत प्रकारसे उत्साहपूर्वक रचना करनेकी रूपहै और वाग्देवी है अर्थात् उसीसे वाक्यका उच्चारण होता है इस कुण्डालिनीदेवीको देवता लोग नमस्कार करते हैं२४

इडानाम्नी तु या नाडी दक्षमार्गे व्यवस्थिता।
सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्षनासापुटे गता ॥ २५ ॥

जो इडा नाम नाडी वामभागमें है वह सुषुम्णाको आवृत करती हुई अर्थात् उससे मिलीहुई नासिकाके दक्षिणद्वारको गई है२५

पिङ्गला नाम या नाडी दक्षमार्गे व्यवस्थिता ।
सुषुम्णा सा समाश्लिष्य वामनासापुटे गता ॥ २६ ॥

दक्षिणमार्गमें जो पिङ्गला नाडी है वह सुषुम्णाके आसरे होके नासिकाके वामद्वारको गई है ॥ २६ ॥

इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत् खलु ।
षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः२७॥

इडा पिङ्गलाके मध्यमें सुषुम्णा है इस सुषुम्णाके छः स्थानमें छः शक्तियाँ हैं उनके नाम ये हैं—डाकिनी, हाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिनी, शाकिनी और इन्हीं छः स्थानमें छः पद्म हैं उनके नाम ये हैं—आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, इनको अपने ज्ञानसे योगी लोग जानते हैं २७

पञ्चमस्थानं सुषुम्णाया नामानि स्युर्बहूनि च ।
प्रयोजनवशात्तानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रतः ॥ २८ ॥

सुषुम्णाके पांच स्थान हैं उनके नाम बहुत हैं प्रयोजनसे शास्त्रकरके जाना जाता है ॥ २८ ॥

अन्या याऽस्त्यपरा नाडी मूलाधारात्समुत्थिताः ।
रसनामेढ्रनयनं पादाङ्गुष्ठे च श्रोत्रकम् ॥ २९ ॥
कुक्षिकक्षाङ्गुष्ठकर्णं सर्वाङ्गं पायुकुक्षिकम् ।
लब्धान्ता वै निवर्तन्ते यथादेशसमुद्भवाः ॥ ३० ॥

और अन्य नाडियाँ मूलाधारसे उठी हैं और जिह्वा, मेढ्र, नेत्र, पादका अंगुष्ठ, कर्ण, कुक्षि, कक्ष हस्तांगुष्ठ, वायु, उपस्थ

इन सब अङ्गोंमें इनका अन्त भया है अर्थात् मूलाधारसे उत्पन्न होके अपने अपने स्थानमें जाके निवृत्त हो गई हैं॥२९॥३०॥

एताभ्य एव नाडीभ्यः शाखोपशाखतः क्रमात्।
सार्धं लक्षत्रयं जातं यथाभागं व्यवस्थितम्॥ ३१॥
एता भोगवहा नाड्यो वायुसञ्चारदक्षकाः।
ओतप्रोताभिसंव्याप्य तिष्ठन्त्यस्मिन् कलेवरे॥३२॥

इन्हीं नाडियोंमेंसे शाखोपशाख क्रमसे साढे तीन लक्ष नाडियां उत्पन्न होके अपने अपने स्थानमें स्थित हैं यह सब भोगवहा नाडियां वायुके सञ्चारमें दक्ष हैं ओतप्रोत अर्थात् संयोगवियोगसे इस शरीरमें व्याप्त हैं॥ ३१॥ ३२॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थः कलाद्वादशसंयुतः।
बस्तिदेशे ज्वलद्वह्निर्वर्तते चान्नपाचकः॥ ३३॥
वैश्वानराग्निरेषो वै मम तेजोंशसम्भवः।
करोति विविधं पाकं प्राणिनां देहमास्थितः॥ ३४॥

द्वादशकलासंयुक्त सूर्यमण्डलके मध्यमें प्रज्वलित अग्नि है सो बस्तिदेशमें अन्नका पाचन करती है वह वैश्वानर अग्नि हमारे तेजसे उत्पन्न है प्राणीके शरीरमें स्थित होकर नाना प्रकारका पाक करता है॥ ३३॥ ३४॥

आयुःप्रदायको वह्निर्बलं पुष्टिं ददाति सः।
शरीरपाटवं चापि ध्वस्तरोगसमुद्भवः॥ ३५॥

सो वैश्वानर अग्नि आयु और बल और पुष्टता और शरीरमें कान्तिका देनेवालाहै और यावत् रोगोंको नाश करनेवालाहै ३५.

तस्माद्वैश्वानराग्निं च प्रज्वाल्य विधिवत्सुधीः।
तस्मिन्नन्नं हुनेद् योगी प्रत्यहं गुरुशिक्षया ॥ ३६ ॥

इस वैश्वानर अग्निको गुरुके शिक्षापूर्वक प्रज्वलित करके नित्य उसमें अन्नका होम करे अर्थात् भोजन करे ॥ ३६ ॥

ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे स्थानानि स्युर्बहूनि च।
मयोक्तानि प्रधानानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रके ॥ ३७॥
नानाप्रकारनामानि स्थानानि विविधानि च।
वर्तन्ते विग्रहे तानि कथितुं नैव शक्यते ॥ ३८ ॥

यह शरीर ब्रह्माण्डसंज्ञा है इसमें बहुत स्थान हैं हमने प्रधान प्रधान स्थान कहे हैं यह शास्त्रसे जाना जाता है, बहुत प्रकारके स्थान और नाम उन स्थानोंके हैं जो इस शरीरमें वर्तमान हैं उनके वर्णन करनेको हम शक्य नहीं हैं अर्थात् बहुत विस्तार है उसके कहनेमें व्यर्थ परिश्रम है ॥ ३७॥ ३८ ॥

इत्थं प्रकल्पिते देहे जीवो वसति सर्वगः।
अनादिवासनामालाऽलंकृतः कर्मशृंखलः ॥ ३९ ॥

इसी तरह शरीर कल्पित है और जीव पूर्व वासनारूपी बेडीमें फँसके मालाके तरह घूमा करता है ॥ ३९ ॥

नानाविधगुणोपेतः सर्वव्यापारकारकः।
पूर्वार्जितानि कर्माणि भुनक्ति विविधानि च ॥ ४० ॥

सोई जीव नाना प्रकारके गुण ग्रहण करता है और संसारमें बहुत प्रकारके व्यापार करता है यह सब पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मके फल भोगता है ॥ ४० ॥

यद्यत्संदृश्यते लोके सर्वं तत्कर्मसम्भवम् ।
सर्वः कर्मानुसारेण जन्तुर्भोगान् भुनक्ति वै ॥ ४१ ॥

जो जो शुभाशुभ कर्म संसारमे देख पडता है वह सबका आदिकारण कर्मही है प्राणीमात्र अपने कर्मके अनुसार भोग भोगता है ॥ ४१ ॥

ये ये कामादयो दोषाः सुखदुःखप्रदायकाः ।
ते ते सर्वे प्रवर्तन्ते जीवकर्मानुसारतः ॥ ४२ ॥

जो जो काम क्रोध आदिसे सुख दुःख होता है सो सब जीव अपने कर्महीके अनुसार वर्तता है ॥ ४२ ॥

पुण्योपरक्तचैतन्ये प्राणान् प्रीणाति केवलम् ।
बाह्ये पुण्यतमं प्राप्य भोज्यवस्तु स्वयं भवेत् ॥४३॥

पुण्यकर्मके अनुष्ठान करनेसे प्राणीको सुख होता है और बाह्य वस्तु श्रेष्ठ भोजन आदि नाना प्रकारकी वस्तु आपही मिल जाती है ॥ ४३ ॥

ततः कर्मबलात्पुंसः सुखं वा दुःखमेव च ।
पापोपरक्तचैतन्यं नैव तिष्ठति निश्चितम् ॥ ४४ ॥
न तद्भिन्नो भवेत् सोऽपि तद्भिन्नो न तु किञ्चन ।
मायोपहितचैतन्यात्सर्वं वस्तु प्रजायते ॥ ४५ ॥

यह प्राणी अपने कर्मके बलसे सुख वा दुःख भोगता है, जीव जब पापमें आसक्त होता है तब दुःख भोगता है फिर उसको सुखलाव नहीं होता, जीव अपने कर्मके अनुसार सुख वा दुःखः भोगता है इसमें भिन्नता नहीं है अर्थात् करता भोग-

तामें भेद नहीं; चैतन्य आत्मा जब मायोपहित होता है तब सब वस्तु उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

यथाकालेऽपि भोगाय जन्तूनां विविधोद्भवः ।
यथा दोषवशाच्छुक्तौ रजतारोपणं भवेत् ।
तथा स्वकर्मदोषाद्वै ब्रह्मण्यारोप्यते जगत् ॥ ४६ ॥

जैसा काल भोगके हेतु निश्चय रहता है उसमें प्राणी नाना प्रकारसे भोग भोगनेके लिये उत्पन्न होता है जैसे—नेत्रके विकारके कारणसे सीपीमें चांदीका आरोप होता है वैसेही अपने कर्मके दोषसे प्राणी ब्रह्ममें मिथ्या जगत्का आरोप करता है ४६

स वासनाभ्रमोत्पन्नोन्मूलनातिसमर्थनम् ।
उत्पन्नं चेदीदृशं स्याज्ज्ञानं मोक्षप्रसाधनम् ॥ ४७ ॥

वासनासे भ्रम उत्पन्न होता है जबतक वासनाकी जड नहीं जाती तबतक कदापि भ्रम दूर नहीं होता इसी तरह जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब कुछ नहीं रह जाता इस हेतुसे ज्ञानहीं मोक्षका साधन है ॥ ४७ ॥

साक्षाद्वै शेषदृष्टिस्तु साक्षात्कारिणि विभ्रमे ।
करणं नान्यथा युक्त्या सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ४८ ॥

विशेष करके दृष्टिसे साक्षात् जो देख पडता है वही साक्षात् भ्रमका कारण है अर्थात् इसी साक्षात्में मनुष्य फँसा है मायाके आवरणसे बुद्धि आगे नहीं जाती और दूसरा कारण कुछ नहीं है, यह हम सत्य कहते हैं ॥ ४८ ॥

साक्षात्कारिभ्रमे साक्षात् साक्षात्कारिणि नाशयेत् ।
सो हि नास्तीति संसारे भ्रमो नैव निवर्तते ॥ ४९ ॥

यह साक्षात् घट पट आदिका भ्रम ब्रह्मके प्रत्यक्ष होनेसे नाश होता है विना आत्माके प्रत्यक्ष भये ब्रह्म संसारमें नहीं है यह भ्रम नहीं निवृत्त होता ॥ ४९ ॥

मिथ्याज्ञाननिवृत्तिस्तु विशेषदर्शनाद्भवेत् ।
अन्यथा न निवृत्तिः स्याद्दृश्यते रजतभ्रतः ॥ ५० ॥

यह मिथ्या संसारका ज्ञान आत्माका विशेष दर्शन होनेसे निवृत्त होता है और किसी प्रकार अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती जैसे सीपीमें चांदीका भ्रम विना सीपीके निश्चय दूर नहीं होता॥

यावन्नोत्पद्यते ज्ञानं साक्षात्कारे निरञ्जने ।
तावत् सर्वाणि भूतानि दृश्यन्ते विविधानि च॥५१॥

जबतक आत्माका साक्षात्कार ज्ञान नहीं होता तबतक सब प्राणी संसार आदि नाना प्रकारके देख पडते हैं ॥ ५१ ॥

यदा कर्मार्जितं देहं निर्वाणे साधनं भवेत् ।
तदा शरीरवहनं सफलं स्यान्न चान्यथा ॥ ५२ ॥

जो यह कर्मार्जित शरीर है इससे निर्वाण अर्थात् आत्मज्ञानका साधन होय तब इसका जन्म और स्थिती सफल हैं नहीं तो व्यर्थ है तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्यको आत्मज्ञान नहीं हुआ या इस विषयका उसने साधन नहीं किया उसका जन्म केवल माताके दुःख देने और पृथ्वीपर भारके हेतु भया५२

यादृशी वासना मूला वर्त्तते जीवसङ्गिनी ।
तादृशं वहते जन्तुः कृत्याकृत्यविधौ भ्रमम् ॥ ५३ ॥

जैसे वासना जीवके संग रहती है वैसेही प्राणी शुभाशुभ-कर्म भ्रमके वश होके करता है और उसी वासनासे उत्पन्न और नाश होता रहता है ॥ ५३ ॥

संसारसागरं तर्तुं यदीच्छेद्योगसाधकः ।
कृत्वा वर्णाश्रमं कर्म फलवर्जं तदाचरेत् ॥ ५४ ॥

योगसाधक यदि संसारसे तरनेकी इच्छा करे तो यावत् वर्णाश्रमका कर्म फलरहित करना उचित है ॥ ५४ ॥

विषयासक्तपुरुषा विषयेषु सुखेप्सवः ।
वाचाभिरुद्धनिर्वाणा वर्तन्ते पापकर्मणि ॥ ५५ ॥

विषयासक्त पुरुष सुख और विषयके इच्छामें सर्वदा रहते हैं और पापकर्ममें ऐसे तत्पर रहते हैं कि वाक्यभी उनका परमार्थ विषयमें रुद्ध रहता है अर्थात् मोक्षका साधन तो बहुत दूर है परंतु परमार्थके चर्चासेभी उनको ज्वर चढता है ॥ ५५ ॥

आत्मानमात्मना पश्यन्न किञ्चिदिह पश्यति ।
तदा कर्मपरित्यागे न दोषोऽस्ति मतं मम ॥ ५६ ॥

जब ज्ञानी आत्मासे आत्माको देखे और सब वस्तुका अभाव जान पडे तब कर्मको त्याग देनेमें कुछ दोष नहीं है यह हमारा मत है ऐसा श्रीशिवजी जगन्माता पार्वतीजीसे कहते हैं ५६

कामादयो विलीयन्ते ज्ञानादेव न चान्यथा ।
अभावे सर्वतत्त्वानां स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ॥ ५७ ॥

ज्ञानमें कामक्रोधादि सकल पदार्थ लय हो जाते हैं इसमें अन्यथा नहीं है जब स्वयं तत्व अर्थात् आत्मज्ञान प्रकाश होता है तब सब तत्वका अभाव हो जाता है ॥ ५७ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगप्रकथने तत्त्वज्ञानोपदेशो नाम द्वितीयपटलः ॥ २ ॥

अथ तृतीयपटलः ३.

अथ योगानुष्ठानपद्धतिर्योगाभ्यासवर्णन च.

हृद्यस्ति पङ्कजं दिव्यं दिव्यलिङ्गेन भूषितम् ।
कादिठान्ताक्षरोपेतं द्वादशार्णविभूषितम् ॥ १ ॥

प्राणीके हृदयस्थानमें एक पद्म सुन्दर दिव्यलिङ्गसे शोभायमान है यह पद्म कसे ठतक द्वादश वर्णकरके शोभित है अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ॥ १ ॥

प्राणो वसति तत्रैव वासनाभिरलंकृतः ।
अनादिकर्मसंश्लिष्टः प्राप्याहङ्कारसंयुतः ॥ २ ॥

उसी पद्ममें प्राणकी स्थिति है और अनादि कर्म अहंकारसंयुक्त वासनासे अलंकृत है ॥ २ ॥

प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च ।
वर्तन्ते तानि सर्वाणि कथितुं नैव शक्यते ॥ ३ ॥

प्राणके वृत्ति भेदसे जो इस शरीरमें वायु वर्तमान है उनके बहुत प्रकारके नाम हैं जिनके वर्णन करनेको हम शक्य नहीं है अर्थात् यहां उनके वर्णनका प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥

प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानश्च पञ्चमः ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ४ ॥
दश नामानि मुख्यानि मयोक्तानीह शास्त्रके ।
कुर्वन्ति तेऽत्र कार्याणि प्रेरितानि स्वकर्मभिः ॥ ५ ॥

प्राणके मुख्य भेदोंका नाम—प्राण, अपान, समान, उदान, पांचवां व्यान । नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय, यह दश वायु मुख्य हैं । हम शास्त्र प्रमाणसे कहते हैं शरीरमें ये वायु अपने कर्मसे प्रेरित होके कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अत्रापि वायवः पञ्च मुख्याः स्युर्दर्शिताः पुनः ।
तत्रापि श्रेष्ठकर्त्तारौ प्राणापानौ मयोदितौ ॥ ६ ॥

इन दश वायुमें पांच मुख्य हैं फिर उनमेंभी निश्चय करके श्रेष्ठ करता श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हमने प्राण और अपानको कहा है ॥ ६ ॥

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ७ ॥
नागादिवायवः पञ्च कुर्वन्ति ते च विग्रहे ।
उद्गारोन्मीलनं क्षुत्तृट् जृम्भा हिक्का च पञ्चमः ॥ ८ ॥

हृदयस्थानमें प्राणकी स्थिति है और गुदामें अपान और नाभिमण्डलमें समान और कण्ठमे उदान और व्यान सब शरीरमें व्याप्त है । नाग आदि जो पांच वायु हैं वह शरीरमें डकार हिचकी जंभाई क्षुधा पिपासा उन्मीलन अर्थात् निद्राके समय जो नेत्रके बंद हो जानेका हेतु है यह सब कार्य करते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अनेन विधिना यो वै ब्रह्माण्डं वेत्ति विग्रहम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ९ ॥

इस विधानसे जो पहिले कहा है उस शरीरको जो मनुष्य ब्रह्माण्ड जानता है वह सर्व पापसे मुक्त होके परमगतिको प्राप्त होता है अर्थात् मुक्त होता है ॥ ९ ॥

अधुना कथयिष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये।
यज्ज्ञात्वा नावसीदन्ति योगिनो योगसाधने ॥ १० ॥

अब हम योगसाधन कहते हैं—इस विधिसे बहुत शीघ्रमें योग सिद्ध होता है। इसके जानलेनेसे योगीको योगसाधनमें कष्ट नहीं होता ॥ १० ॥

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ॥ ११ ॥

जो विद्या गुरुके मुखसे सुनी वा जानी जाती है वह वीर्यवती होती है और अन्य प्रकारसे विद्या फलहीन निर्वीर्या और अतिदुःखकी देनेवाली होती है। तात्पर्य यह है कि योगविद्या वा अन्यविद्या भले प्रकार गुरुसे जानकरके करना उचित है जो लोग पुस्तकसे वा किसीको करते देखके योगादिक क्रिया आरम्भ कर देते हैं उनका कल्याण नही होता यथार्थ न जाननेसे कष्टही होता है ॥ ११ ॥

गुरुं सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।
अवलम्बेन विद्यायास्तस्याः फलमवाप्नुयुः ॥ १२ ॥

गुरुको सब तरहसे प्रसन्न करके जो विद्या मिलती है उस विद्याका फल शीघ्र होता है अर्थात् थोडे कालमें सिद्ध होजाती है

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः ।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात् सर्वैः प्रसेव्यते ॥ १३ ॥
गुरुप्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभमात्मनः ।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥ १४ ॥
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा स्पृष्ट्वा सव्येन पाणिना ।
अष्टांगेन नमस्कुर्याद्गुरुपादसरोरुहम् ॥ १५ ॥

गुरु पिता और गुरु माता और गुरु देवता हैं इसमें संशय नहीं हैं । इस हेतुसे गुरुको कर्मसे मनसे वाक्यसे सब प्रकारसे सेवा करना उचित है । गुरुके प्रसादसे आत्माका सब शुभ हो जाता है । इसीलिये गुरुकी नित्य सेवा करना उचित है, दूसरी तरह शुभ नही है । गुरुको तीन प्रदक्षिणा करके दक्षिण हाथसे स्पर्श करके गुरुके चरणकमलमें साष्टांग नमस्कार करना उचित है ॥ १३–१५ ॥

श्रद्धयात्मवतां पुंसां सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
अन्येषां च न सिद्धिः स्यात्तस्माद् यत्नेन साधयेत् १६

जिस पुरुषको श्रद्धा है उसको निश्चय करके विद्या सिद्ध होती है दूसरेको नहीं होती इस हेतुसे साधकको उचित है कि यत्नसे साधन करे ॥ १६ ॥

न भवेत् सङ्गयुक्तानां तथाविश्वासिनामपि ।
गुरुपूजाविहीनानां तथा च बहुसंगिनाम् ॥ १७ ॥

मिथ्यावादरतानां च तथा निष्ठुरभाषिणाम् ।
गुरुसन्तोषहीनानां न सिद्धिः स्यात् कदाचन ॥ १८

जिस पुरुषका किसी व्यवहारी मनुष्यसे अतिसङ्ग है उसको योगविद्या सिद्ध नहीं होती ऐसेही अविश्वासी और जो गुरुपूजासे हीन हैं और जिनका बहुत लोगोंसे सङ्ग है और वह लोग जो झूठ और कठोर वचन बोला करते हैं वह लोग जो गुरुको प्रसन्न नहीं करते इन लोगोंको कदापि सिद्धि नहीं होती १७॥ १८

फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम् ।
द्वितीयं श्रद्धया युक्तं तृतीयं गुरुपूजनम् ॥ १९ ॥
चतुर्थं समताभावं पञ्चमेन्द्रियनिग्रहम् ।
षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते ॥ २० ॥

योगसिद्धि होनेका प्रथम लक्षण यह है कि—उसके सिद्धिमें विश्वास हो, दूसरे श्रद्धायुक्त, तीसरे गुरुपूजारत हो, चौथे प्राणिमात्रमें समताभाव रक्खे, पांचवें इन्द्रियोंका निग्रह रहे, छठे परिमित भोजन करे ये छः लक्षण योगसिद्धिके हैं और सातवां नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥

योगोपदेशं संप्राप्य लब्ध्वा योगविदं गुरुम् ।
गुरूपदिष्टविधिना धिया निश्चित्य साधयेत् ॥ २१ ॥

योगवेत्ता गुरुसे योगका उपदेश लेके जिस विधिसे गुरु उपदेश करे उस विधिसे बुद्धि निश्चिय करके साधन करे ॥ २१ ॥

सुशोभने मठे योगी पद्मासनसमन्वितः ।
आसनोपरि संविश्य पवनाभ्यासमाचरेत् ॥ २२ ॥

उपद्रवोंसे रहित सुन्दर स्वच्छ और उसका सूक्ष्म रन्ध्र होय उस मठमें पद्मासन संयुक्त आसनपर बैठके योगी पवनका अभ्यास करे ॥ २२ ॥

समकायः प्राञ्जलिश्च प्रणम्य च गुरून् सुधीः।
दक्षे वामे च विघ्नेशं क्षेत्रपालाम्बिकां पुनः ॥ २३ ॥

समकायः-अर्थात् सीधा शरीर करके हाथ जोडके गुरुको प्रणाम करे और दक्षिण वाम भागमें गणेशजीको प्रणाम करे और क्षेत्रपाल और जगन्माता देवीको प्रणाम करना उचितहै २३

ततश्च दक्षाङ्गुष्ठेन निरुद्ध्य पिङ्गलां सुधीः।
इडया पूरयेद्वायुं यथाशक्त्या तु कुम्भयेत् ॥ २४ ॥
ततस्त्यक्त्वा पिङ्गलया शनैरेव न वेगतः।
पुनः पिङ्गलयापूर्य यथाशक्त्या तु कुम्भयेत्॥२५॥
इडया रेचयेद्वायुं न वेगेन शनैः शनैः।
इदं योगविधानेन कुर्याद्विंशतिकुम्भकान्।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः प्रत्यहं विगतालसः ॥ २६ ॥

इसके पश्चात् दाहिने हाथके अंगुष्ठसे पिंगलाको रोक करके इडासे वायु पूरक करे अर्थात् ग्राह्य करे और यथाशक्ति वायुको रोके फिर पिंगलासे शनैः शनैः रेचक अर्थात् वायुको बाहर करे इसी प्रकार फिर पिंगलासे पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करे फिर इडासे धीरे रेचक करे वेगसे कदापि न करे। इस योगविधानसे वीस कुम्भक करे और सर्वद्वन्द्वसे रहित होजाय

अर्थात् एकाकार वृत्ति रक्खे और नित्य आलस्यको त्याग करके अभ्यास करे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

प्रातःकाले च मध्याह्ने सूर्यास्ते चार्धरात्रके।
कुर्यादेवं चतुर्वारं कालेष्वेतेषु कुम्भकान् ॥ २७ ॥

पूर्वोक्त विधिसे प्रातःकाल और मध्याह्नमें और सायंकालमें और अर्द्धरात्रिमें इसी तरह चार वार नित्य कुम्भक करना उचित है ॥ २७ ॥

इत्थं मासद्वयं कुर्यादनालस्यो दिने दिने।
ततो नाडीविशुद्धिः स्यादविलम्बेन निश्चितम् ॥२८॥

इसी प्रकार आलस्यको छोड करके दो मास नित्य करे तो उस पुरुषकी नाडी बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाय यह निश्चय है२८

यदा तु नाडीशुद्धिः स्याद् योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।
तदा विध्वस्तदोषश्च भवेदारम्भसम्भवः ॥ २९ ॥

तत्त्वदर्शी योगीका जब नाडी शुद्ध होगी तब सर्व दोषका नाश होगा और आरम्भका सम्भव होगा ॥ २९ ॥

चिह्नानि योगिनो देहे दृश्यन्ते नाडिशुद्धितः।
कथ्यन्ते तु समस्तान्यङ्गानि संक्षेपतो मया ॥ ३० ॥

नाडी शुद्ध होनेपर जो योगीके शरीरमें चिह्न देख पडते हैं उन सबको हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥

समकायः सुगन्धिश्च सुकान्तिः स्वरसाधकः ॥३१॥
आरम्भघटकश्चैव यथा परिचयस्तदा।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु योगावस्था भवन्ति ताः ॥३२॥

जब योगीकी नाडी शुद्ध होगी तब समकाय हो जायगा अर्थात् न स्थूल न कृश न वक्र रहेगा और शरीरमें सुगंधी संयुक्त अच्छी कान्ति अर्थात् तेज रहेगा और वायुस्वरका साधन हो जायगा और आरम्भका लक्षण जान पडेगा और सब योगका ज्ञान हो जायगा इसको योगावस्था कहते हैं ३१॥ ३२॥

आरम्भः कथितोऽस्माभिरधुना वायुसिद्धये।
अपरः कथ्यते पश्चात्सर्वदुःखौघनाशनः ॥ ३३ ॥

अभी जो हमने कहा है सो प्राणवायु सिद्धहोनेके आरम्भमें यह चिह्न होता है और इसके पीछे जो सर्व दुःखका नाश होता है सो कहते हैं ॥ ३३ ॥

प्रौढवह्निः सुभोगी च सुखी सर्वाङ्गसुन्दरः।
संपूर्णहृदयो योगी सर्वोत्साहबलान्वितः।
जायते योगिनोऽवश्यमेते सर्वकलेवरे ॥ ३४ ॥

साधकके शरीरमें जठराग्नि विशेष प्रज्वलित होगी और सर्व अङ्ग सुन्दर सुखपूर्वक सुन्दर भोजन करेगा और बल संयुक्त सर्व उत्साहसे हृदय योगीका प्रसन्न रहेगा इतने गुण योगीके शरीरमें अवश्य होंगे ॥ ३४ ॥

अथ वर्ज्यं प्रवक्ष्यामि योगविघ्नकरं परम्।
येन संसारदुःखाब्धिं तीर्त्वा यास्यन्ति योगिनः॥ ३५॥

अब जो योगमें विघ्न हैं उनको हम कहते हैं जिनको त्यागके यह संसाररूपी जो दुःखका समुद्र है योगी उसके पार हो जाता है ॥ ३५ ॥

आम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटुम्।
बहुलं भ्रमणं प्रातःस्नानं तैलविदाहकम्॥ ३६॥
स्तेयं हिंसां जनद्वेषं चाहङ्कारमनार्जवम्।
उपवासमसत्यञ्च मोहञ्च प्राणपीडनम्॥ ३७॥
स्त्रीसङ्गमग्निसेवां च बह्वालापं प्रियाप्रियम्।
अतीव भोजनं योगी त्यजेदेतानि निश्चितम्॥३८॥

खट्टा, रूखा, तीक्ष्ण, लोन, सरसों, कडुआ, बहुत भ्रमण करना, प्रातःकाल स्नान, शरीरमें तेल मर्दन करना, स्वर्ण आदिककी चोरी, हिंसा, मनुष्यसे द्वेष, अहंकार, अनार्जव अर्थात् सनुष्यसे प्रेम न रखना, उपवास, झूठ, ममता, प्राणीको पीडा देना, स्त्रीका संग, अग्निसेवन, प्रिय अप्रिय बहुत बोलना, बहुत भोजन करना। उचित है कि ये सब योगी अवश्य त्याग दें॥३८

उपायं च प्रवक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये।
गोपनीयं साधकानां येन सिद्धिर्भवेत् खलु॥ ३९॥

अब हम बहुत शीघ्रयोग सिद्ध होनेका उपाय कहतेहैं इसको गोप्य रखनेसे साधकको योग निश्चय सिद्ध हो जायगा॥ ३९॥

घृतं क्षीरं च मिष्टान्नं ताम्बूलं चूर्णवर्जितम्।
कर्पूरं निष्तुषं मिष्टं सुमठं सूक्ष्मवस्त्रकम्॥ ४०॥
सिद्धान्तश्रवणं नित्यं वैराग्यगृहसेवनम्।
नामसङ्कीर्तनं विष्णोः सुनादश्रवणं परम्॥ ४१॥
धृतिः क्षमा तपः शौचं ह्रीर्मतिर्गुरुसेवनम्।
सदैतानि परं योगी नियमानि समाचरेत्॥ ४२॥

घृत, दूध, मधुर पदार्थ, ताम्बूल कर्पूर वासितचूर्ण रहित खावे,कठोर शब्दरहित मधुर बोले,सुन्दर सूक्ष्म रन्ध्रके स्थानमें रहे, सूक्ष्म वस्त्र अर्थात् महीन और थोडा वस्त्र धारण करे, नित्य सिद्धांत अर्थात् वेदान्त श्रवण करे, और वैराग्यसे गृहमें रहे, ईश्वरका स्मरण करे, अच्छा शब्द श्रवण करे, धैर्य, क्षमा, तप, शौच लज्जा, गुरुकी सेवा करे योगी सदैव इस प्रकार नेम-संयुक्त रहे तो कल्याण होगा॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अनिलेऽर्कप्रवेशे च भोक्तव्यं योगिभिः सदा।
वायौ प्रविष्टे शशिनि शयनं साधकोत्तमैः ॥ ४३ ॥

जब सूर्य नाडी अर्थात् पिङ्गला नाडीका प्रवाह रहे, तब योगी सदैव भोजन करे और जब चन्द्र अर्थात् इडा नाडीसे वायुका प्रवाह रहे तब साधकको शयन करना उचित है॥ ४३॥

सद्यो भुक्तेऽपिक्षुधितेनाभ्यासः क्रियते बुधैः।
अभ्यासकाले प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यभोजनम्॥४४॥

भोजन करके तुरंत उसी समय अथवा जब क्षुधित होय तब साधक कदापि अभ्यास न करे और अभ्यास कालमें प्रथम दूध घृत भोजन करे ॥ ४४ ॥

ततोऽभ्यासे स्थिरीभूते न तादृङ्नियमग्रहः।
अभ्यासिना विभोक्तव्यं स्तोकमनेकधा ॥ ४५ ॥
पूर्वोक्तकाले कुर्यात्तु कुम्भकान् प्रतिवासरे।
ततो यथेष्टा शक्तिः स्याद्योगिनो वायुधारणे ॥४६ ॥

यथेष्टं मारणाद्वायोः कुम्भकः सिध्यति ध्रुवम्।
केवले कुम्भके सिद्धे किं न स्यादिह योगिनः॥४७॥

जब अभ्यास स्थिर हो जांय तब पूर्वोक्त नियमका कुछ प्रयोजन नहीं है और अभ्यासीको उचित है कि थोडा थोडा कईवार भोजन करे और जिस प्रकार पाहिले कहा है उसी तरह नित्य कुम्भक करे। जब योगीको वायु धारण करनेकी शक्ति इच्छाके अनुसार हो जायगी तब कुंभक निश्चय सिद्ध होगा। केवल कुम्भक सिद्ध होनेसे योगी क्या नहीं कर सकता अर्थात् सब सिद्ध कर सकता है॥ ४५-४७॥

स्वेदः संजायते देहे योगिनः प्रथमोद्यमे॥ ४८॥
यदा संजायते स्वेदो मर्दनं कारयेत्सुधीः।
अन्यथा विग्रहे धातुर्नष्टो भवति योगिनः॥ ४९॥

योगीके शरीरमें प्रथम स्वेद अर्थात् पसीना उत्पन्न होता है जब स्वेद उत्पन्न होय तो उसके शरीरमें मर्दन करे अन्यथा अर्थात् मर्दन न करनेसे योगीके शरीरका धातु नष्ट हो जाता है॥

द्वितीये हि भवेत् कम्पो दार्दुरी मध्यमे मतः।
ततोऽधिकतराभ्यासाद्गगनेचरसाधकः॥ ५०॥

दूसरे भूमिकामें कम्प होता है तीसरेमें दार्दुरीवृत्ति होती है अर्थात् आसन उठता है फिर भूमिपर आय जाता है उससे अधिक अभ्यास होनेसे योगी गगनमें स्वेच्छाचारी हो जाताहै५०

योगी पद्मासनस्थोऽपि भुवमुत्सृज्य वर्तते।
वायुसिद्धिस्तदा ज्ञेया संसारध्वान्तनाशिनी॥ ५१॥

योगी पद्मासनस्थ होके पृथ्वीको त्यागके आकाशमें स्थिर रहे तब जाने कि संसारके अन्धकार नाशकरनेवाली वायु सिद्ध होगई ॥ ५१ ॥

तावत्कालं प्रकुर्वीत योगोक्तनियमग्रहम् ।
अल्पनिद्रा पुरीषं च स्तोकं मूत्रं च जायते ॥ ५२ ॥

उस कालतक योगके हेतु पूर्वोक्त नियम करना उचित है जबतक वायु न सिद्ध होय और योगीको थोडी निद्रा और थोडा मल मूत्र होता है ॥ ५२ ॥

अरोगित्वमदीनत्वं योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ।
स्वेदो लाला कृमिश्चैव सर्वथैव न जायते ॥ ५३ ॥
कफपित्तानिलाश्चैव साधकस्य कलेवरे ।
तस्मिन् काले साधकस्य भोज्येष्वनियमग्रहः॥५४॥

तत्त्वदर्शी योगीको कायिक वा मानसिक व्यथा उत्पन्न नहीं होती और स्वेद लाला कृमि आदि उत्पन्न नहीं होता और साधकके शरीरमें कफ पित्त वातका दोषभी नहीं होता पूर्वोक्त कालतक साधक भोजन आदिका नियम करे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अत्यल्पं बहुधा भुक्त्वा योगी न व्यथते हि सः ।
अथाभ्यासवशाद्योगी भूचरीं सिद्धिमाप्नुयात् ।
यथा दर्दुरजन्तूनां गतिः स्यात्पाणिताडनात् ॥५५॥

योगीको बहुत थोडा या विशेष भोजन करनेसे कष्ट न होगा और योगीको अभ्याससे भूचरीसिद्धि हो जायगी जैसे दर्दुर-

जंतु पाणि ताडन करके पृथ्वीमें प्रवेश करताहै उसी प्रकार योगीभी हाथ ताडन करके प्रवेश करता ॥ ५५ ॥

सन्त्यत्र बहवो विघ्ना दारुणा दुर्निवारणाः ।
तथापि साधयेद्योगी प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ५६ ॥

इस योगसाधनमें बहुत दारुण विघ्न होते हैं जिसका निवारण बहुत कठिन है परन्तु साधकको उचित है कि यदि कंठगतभी प्राण हों जाय तोभी साधन न छोडे ॥ ५६ ॥

ततो रहस्युपाविष्टः साधकः संयतेन्द्रियः ।
प्रणवं प्रजपेद्दीर्घं विघ्नानां नाशहेतवे ॥ ५७ ॥

साधकको उचित है कि विघ्नोंके नाशके हेतु इन्द्रियोंके संयमसे अर्थात् उनके कार्यको रोकके विधिपूर्वक एकान्तमें बैठे दीर्घमात्रासे अर्थात् स्पष्ट अक्षरके उच्चारणसे प्रणवका जपकरे५७

पूर्वार्जितानि कर्माणि प्राणायामेन निश्चितम् ।
नाशयेत् साधको धीमानिह लोकोद्भवानि च ॥५८॥

पूर्वार्जित कर्म और जो इस जन्ममें किया है यह दोनोंके फलको बुद्धिमान् साधक प्राणायामसे निश्चय नाश कर देताहै ॥

पूर्वार्जितानि पापानि पुण्यानि विविधानि च ।
नाशयेत् षोडशप्राणायामेन योगिपुङ्गवः ॥ ५९ ॥

श्रेष्ठयोगी पूर्वार्जित नानाप्रकारका पाप और पुण्यको सोलह प्राणायामसे नाश कर देता है ॥ ५९ ॥

पापतूलचयानाहो प्रलयेत्प्रलयाग्निना ।
ततः पापविनिर्मुक्तः पश्चात्पुण्यानि नाशयेत् ॥६०॥

साधक पापराशिको तूलके समान प्राणायामरूपी अग्निसे प्रलय कर देता है अर्थात् जला देता है इस प्रकारसे मुक्त होके पश्चात् पुण्यकोभी उसी अग्निमें नाश कर देता है ॥ ६० ॥

प्राणायामेन योगीन्द्रो लब्ध्वैश्वर्याष्टकानि वै ।
पापपुण्योदधिं तीर्त्वा त्रैलोक्यचरतामियात् ॥ ६१॥

योगी प्राणायामके प्रभावसे आठ ऐश्वर्य जिसको अष्टसिद्धि कहते हैं—अर्थात् अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य,ईशिता,वशिता प्राप्त करता है। अब इन आठों सिद्धिके लक्षण कहते हैं-योगीका शरीर इच्छामात्रसे परमाणुवत् हो जाय उसको अणिमा कहते हैं और योगी इच्छापूर्वक प्रकृतिको अपनेमें करके आकाशवत् स्थूल होजाय उसको महिमा कहते हैं। अति हलके शरीरका पर्वतके समान भारी हो जाना उसको गरिमा कहते हैं। बहुत भारी पर्वतके समानको रुईके सदृश होजाना इसको लघिमा कहते हैं और सर्व पदार्थ इच्छामात्रसे योगीके समीप हो जाय उसको प्राप्ति कहते हैं। दृश्यादृश्य अर्थात् कभी देख पडे कभी न देख पडे इसको प्राकाम्य कहते हैं। भूत भविष्य पदार्थको जन्म मरणकी रचना करनेमें समर्थ होय उसको ईशता कहते हैं। भूत भविष्य वर्तमान पदार्थको इच्छासे अपने स्वाधीन कर लेना इसको वशित्वसिद्धि कहते हैं और योगी पाप पुण्यके समुद्रको तरके अपनी इच्छापूर्वक त्रैलोक्यमें विचरता है ॥ ६१ ॥

ततोऽभ्यासक्रमेणैव घटिकात्रितयं भवेत् ।
येन स्यात्सकला सिद्धिर्योगिनः स्वेप्सिता ध्रुवम् ॥ ६२

पूर्वोक्त क्रमसे प्राणायाम जब तीन घडीतक स्थिर होजायगा तब योगीको उसके इच्छाके अनुसार सब सिद्ध होजायगा यह निश्चय है ॥ ६२ ॥

वाक्सिद्धिः कामचारित्वं दूरदृष्टिस्तथैव च ।
दूरश्रुतिः सूक्ष्मदृष्टिः परकायप्रवेशनम् ॥ ६३ ॥
विण्मूत्रलेपनं स्वर्णमदृश्यं करणं तथा ।
भवन्त्येतानि सर्वाणि खेचरत्वं च योगिनाम् ॥६४॥

वाक्सिद्धि स्वेच्छाचारी दूरदृष्टि दूरशब्दश्रवण अतिसूक्ष्म दर्शन दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेकी शक्ति होय और योगी अन्य धातुमें अपने मल मूत्र लेपनमात्रसे स्वर्ण करे और योगीको अदृश्य हो जानेकी शक्ति और आकाशमें गमन करनेकी सिद्धि यह सब योगीको कुम्भक सिद्ध होजानेसे स्वयं सिद्ध हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

यदा भवेद् घटावस्था पवनाभ्यासने परा ।
यदा संसारचक्रेऽस्मिन् तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥६५

जब योगीकी घटावस्था होगी अर्थात् उसमें योगकी घटना होगी तब यह संसारचक्र योगीको कुछ असाध्य न रहेगा ६५

प्राणापाननादबिंदू जीवात्मपरमात्मनोः ।
मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ॥ ६६ ॥

प्राण अपान नाद विन्दु जीवात्मा और परमात्मा इनकी एकत्र घटना होनेसे इसको घटावस्था कहते हैं ॥ ६६ ॥

यामंमात्रं यदा धर्त्तुं समर्थः स्यात्तदाद्भुतः ।
प्रत्याहारस्तदैव स्यान्नान्तरा भवति ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

एकप्रहरमात्र जब वायुधारणकरनेकी सामर्थ्य होगा तब अद्भुत प्रत्याहारकी शक्ति होगी फिर साधनमें अन्तर न होगा निश्चय है ॥ ६७ ॥

यं यं जानाति योगीन्द्रस्तं तमात्मेति भावयेत् ।
यैरिन्द्रियैर्यद्विधानस्तदिन्द्रियजयो भवेत् ॥ ६८ ॥

योगी जो जो पदार्थ जाने सो सो पदार्थमें आत्माकीही भावना करे जो इन्द्रियसे जिस पदार्थका बोध होगा उस पदार्थमें वही आत्मभावनासे वह इन्द्रिय जय हो जायगी । अर्थात् जैसे नेत्रसे रूपका बोध होता है वैसे रूपमें आत्मभावना होगी तब उस भावनासे चक्षु इन्द्रिय रूपमें कदापि आसक्त न होगी जब वह आसक्त न भई तब वह इन्द्रिय आपही जय होगयी॥

याममात्रं यदा पूर्णं भवेदभ्यासयोगतः ।
एकवारं प्रकुर्वीत तदा योगी च कुम्भकम् ॥ ६९ ॥
दण्डाष्टकं यदा वायुर्निश्चलो योगिनो भवेत् ।
स्वसामर्थ्यात्तदाङ्गुष्ठे तिष्ठद्वातुलवत् सुधी ॥ ७० ॥

जब एकवारमें पूर्ण एक प्रहरतक योगीका अभ्याससे कुम्भक स्थिर रहेगा अर्थात् आठ घडीतक योगीका वायु

निश्चल रहे तब वह अपने सामर्थसे अंगुष्ठमात्रके बलसे अचल अबोधवत् खडा रह सकता है अर्थात् यह सामर्थ्यभी योगीको होगा और अपने सामर्थ्यको गोप्य रखनेके हेतु विक्षिप्तकी चेष्टा योगी दिखलावेगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥

ततः परिचयावस्था योगिनोऽभ्यासतो भवेत् ।
यदा वायुश्चन्द्रसूर्यं त्यक्त्वा तिष्ठति निश्चलम् ।
वायुः परिचितो वायुः सुषुम्णा व्योम्नि संचरेत्॥७१॥
क्रियाशक्तिं गृहीत्वैव चक्रान् भित्वा सुनिश्चितम्७२
यदा परिचयावस्था भवेदभ्यासयोगतः ।
त्रिकूटं कर्मणां योगी तदा पश्यति निश्चितम् ॥७३॥

इस अन्तरमें योगीकी अभ्याससे परिचयावस्था होगी जब वायु इडा पिङ्गलाको त्यागके निश्चल स्थिर रहेगा तब परिचित होके सुषुम्णाके रन्ध्रसे प्राणवायु आकाशको गमन करेगा ॥ क्रियाशक्तिको ग्रहण करके योगी निश्चय सब चक्रको वेधेगा और जब योगाभ्याससे परिचयावस्था होगी तब त्रिकूट कर्मोंको योगी निश्चय देखेगा। तात्पर्य यह है कि जब योगीका पूर्वोक्त अभ्यास सिद्ध हो जायगा तब त्रिकूट अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक (मानसिक दुःखको आध्यात्मिक कहते हैं और भूत पिशाचादिसे जो कष्ट होता है उसको आधिभौतिक कहते हैं और देवता आदिसे जो कर्मानुसार कष्ट होता है उसको आधिदैविक कहते हैं यह त्रिकूट) कर्मोंका ज्ञान योगीको हो जाता है ॥ ७१-७३ ॥

ततश्च कर्मकूटानि प्रणवेन विनाशयेत् ।
स योगी कर्मभोगाय कायव्यूहं समाचरेत् ॥ ७४ ॥

इस कर्मकूटको योगी प्रणवद्वारा नाश कर देता है और यदि पूर्वकृत कर्मफल भोगनेकी इच्छा करे तो अपने इच्छानुसार इसी जन्ममें इसी शरीरसे भोग लेगा ॥ ७४ ॥

अस्मिन्काले महायोगी पंचधा धारणं चरेत् ।
येन भूरादिसिद्धिः स्यात्ततो भूतभयापहा ॥ ७५ ॥
आधारे घटिकाःपञ्च लिङ्गस्थाने तथैव च ।
तदूर्ध्वं घटिकाःपञ्च नाभिहृन्मध्यकं तथा ॥ ७६ ॥
भ्रूमध्योर्ध्वं तथा पंच घटिका धारयेत् सुधीः ।
तथा भूरादिना नष्टो योगीन्द्रो न भवेत् खलु ॥७७॥

जिस कालमें महायोगी पञ्चधा धारणा सिद्धि कर लेगा तब यह पञ्चभूत सिद्ध हो जायँगे और इनसे कोई कष्टका भय न होगा । अब धारणका निर्णय करते हैं—आधारचक्रमें पांच घडी वायु धारण करे इसी क्रमसे स्वाधिष्ठान माणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञाचक्रमें अर्थात् गुदा लिङ्ग नाभि हृदय कंठ भ्रुकुटीके मध्यमें ऊपर कहेहुए प्रमाणसे वायु धारण करेगा तो योगी पञ्चभूतसे निश्चय नाश न होगा ॥ ७५–७७ ॥

मेधावी सर्वभूतानां धारणां यः समभ्यसेत् ।
शतब्रह्ममृतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते ॥ ७८ ॥

बुद्धिमान् योगी अभ्याससे पञ्चभूतको धारण करेगा तो यदि एक शत ब्रह्माभी मृत्युको प्राप्तहोंगे तबभी उसकी मृत्यु न होगी॥

ततोऽभ्यासक्रमेणैव निष्पत्तिर्योगिनो भवेत् ।
अनादिकर्मबीजानि येन तीर्त्वाऽमृतं पिबेत्॥ ७९॥

इस अभ्यासक्रमसे योगीको ज्ञान होता है और अनादिकर्म बीजको तरके अर्थात् नाश करके योगी अमृतपान करताहै७९

यदा निष्पत्तिर्भवति समाधेः स्वेन कर्मणा ।
जीवन्मुक्तस्य शान्तस्य भवेद्धीरस्य योगिनः ॥८०॥
यदा निष्पत्तिसंपन्नः समाधिः स्वेच्छया भवेत्॥८१॥
गृहीत्वा चेतनां वायुः क्रियाशक्तिं च वेगवान् ।
सर्वान् चक्रान् विजित्वा च ज्ञानशक्तौ विलीयते८२

जब अपने अभ्यासकर्मसे योगीको समाधिका ज्ञान होगा तब जीवन्मुक्त शान्त होके योगीको ज्ञानसम्पन्न स्वेच्छासमाधिं होगी और मन वायु क्रिया शक्ति सहित सर्व चक्रको वेधके ज्ञानशक्तिमें लीन हो जायगा॥ ८०-८२ ॥

इदानीं क्लेशहान्यर्थं वक्तव्यं वायुसाधनम् ।
येन संसारचक्रेऽस्मिन् रोगहानिर्भवेद्ध्रुवम् ॥८३ ॥

हे देवी ! अब क्लेशहानिके अर्थ वायुसाधन कहते हैं-जिससे इस संसारचक्रमें निश्चय रोगादिक नाश होजाय और साधकको कष्ट न हो ॥ ८३ ॥

रसनां तालुमूले यः स्थापयित्वा विचक्षणः ।
पिबेत् प्राणानिलं तस्य रोगाणां संक्षयो भवेत्॥८४॥

जिह्वाको तालूके मूलमें स्थित करके बुद्धिमान् साधक यदि प्राणवायुको पान करे तो उसके सर्वरोगोंका नाश हो जायगा८४

काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं शीतलं यो विचक्षणः ।
प्राणापानविधानज्ञः स भवेन्मुक्तिभाजनः ॥ ८५ ॥

जो बुद्धिमान् साधक प्राण अपानके विधानका ज्ञाता काकचञ्च्वा अर्थात् अधरको काकके चोंचके समान लम्बा करके सीतल वायुपान करता है सो योगी मुक्ति भाजन है अर्थात् मुक्तिपात्र है ॥ ८५ ॥

सरसं यः पिबेद्वायुं प्रत्यहं विधिना सुधीः ।
नश्यन्ति योगिनस्तस्य श्रमदाहजरामयाः ॥८६ ॥

जो साधक नित्य विधानपूर्वक रससहित वायुपान करता है उसका सर्वरोग और श्रम दाह जरा अर्थात् वृद्धावस्था नाश हो जाती है अर्थात् ये सब उसके समीप नहीं आते ॥ ८६ ॥

रसनामूर्द्धगां कृत्वा यश्चन्द्रे सलिलं पिबेत् ।
मासमात्रेण योगीन्द्रो मृत्युं जयति निश्चितम् ॥८७॥

जो योगी जिह्वाको ऊपर करके चंद्रमासे विगत सुधारसको पान करता है सो योगी एक मासमें निश्चय मृत्युको जीत लेता है इस जगह जिह्वा ऊपर करनेसे तात्पर्य खेचरी मुद्रासे है सो खेचरी मुद्रा गुरुमुखसे जानना उचित है ॥ ८७ ॥

राजदन्तबिलं गाढं संपीडच विधिना पिबेत् ।
ध्यात्वा कुण्डलिनीं देवीं षण्मासेन कविर्भवेत्॥८८॥

जो साधक राजदन्तको नीचेके दांतसे दबायके उसके रन्ध्रद्वारा विधिसे वायुपान करे और उस कालमें कुंडलिनी देवीका ध्यान करेगा तो निश्चय छःमासमें कवि होगा ॥ ८८ ॥

काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं सन्ध्ययोरुभयोरपि।
कुण्डलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शान्तये॥८९॥

पूर्वोक्त काकचञ्च्वा विधिसे दोनों संध्यामें जो कुण्डलि-नीके मुखका ध्यान करके वायुपान करेगा उसका क्षयरोग नाश हो जायगा ॥ ८९ ॥

अहर्निशं पिबेद्योगी काकचञ्च्वा विचक्षणः।
पिबेत्प्राणानिलं तस्य रोगाणां संक्षयो भवेत्।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथा स्याद्दर्शनं खलु ॥ ९० ॥

जो योगी बुद्धिमान् रात्रि दिवस काकचंचुसे प्राणवायु पान करते हैं उनके रोगोंका नाश हो जाता है और दूरका शब्द-श्रवण होता है और दूरकी वस्तु देख पडती है तथा निश्चय सूक्ष्म दर्शन होता है ॥ ९० ॥

दन्ते दन्तान् समापीड्य पिबेद्वायुं शनैः शनैः।
ऊर्ध्वजिह्वः सुमेधावी मृत्युं जयति सोऽचिरात् ॥९१॥

जो बुद्धिमान् दांतसे दांतको पीडित करके धीरे धीरे वायु-पान करेगा और जिह्वा ऊपर करके अमृतपान करेगा सो शीघ्र मृत्युको जीत लेगा ॥ ९१ ॥

षण्मासमात्रमभ्यासं यः करोति दिने दिने।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रोगान्नाशयते हि सः ॥ ९२ ॥
संवत्सरकृताभ्यासान्मृत्युं जयति निश्चितम्।
तस्मादतिप्रयत्नेन साधयेद्योगसाधकः ॥ ९३ ॥

वर्षत्रयकृताभ्यासाद्भैरवो भवति ध्रुवम् ।
अणिमादिगुणान् लब्ध्वा जितभूतगणः स्वयम् १४॥

जो पहिले कहे हुए अभ्यासको नित्य छः मास करे तो सब रोगोंका नाश होजायगा और सब पापसे मुक्त होजाय और उसी अभ्यासको एक वर्ष करे तो मृत्युको निश्चय जीत ले इस हेतुसे साधक इस क्रियाका यत्न करके अवश्य साधन करे और यदि इसका अभ्यास तीन वर्ष करे तो निश्चय भैरव हो जाय और अष्टसिद्धिका लाभ होय और सर्व भूतगण आपही वशमें हो जाय ॥ १२–१४ ॥

रसनामूर्द्धगां कृत्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति ।
क्षणेन मुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥ १५ ॥

योगीकी जिह्वा यदि क्षणमात्र ऊपर स्थिर होजाय तो उसी क्षणसे सर्व व्याधि और वृद्धावस्था और मृत्युका नाश होजाय तात्पर्य यह है कि खेचरी मुद्रासे किञ्चित्मात्रभी अमृतपान कर लेगा तो उसकी मृत्यु न होगी ॥ १५ ॥

रसनां प्राणसंयुक्तां पीड्यमानां विचिन्तयेत् ।
न तस्य जायते मृत्युः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥१६॥

जिह्वाको प्राणसहित पीडित करके जो पुरुष ब्रह्मरन्ध्रमें ध्यान संयुक्त स्थिर करेगा हे देवी ! हम वारंवार कहते हैं कि निश्चय उसकी मृत्यु न होगी ॥ १६ ॥

एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ।
न क्षुधा न तृषा निद्रा नैव मूर्च्छा प्रजायते ॥ १७ ॥

इस योगाभ्याससे जो पाहिले कहा है वह पुरुष दूसरा कामदेव होजायगा अर्थात् कामदेवके समान शोभित होगा और उसको क्षुधा, तृषा, निद्रा, मूर्छा कभी न उत्पन्न होगी ॥९७॥

अनेनैव विधानेन योगीन्द्रोऽवनिमण्डले ।
भवेत्स्वच्छन्दचारी च सर्वापत्परिवर्जितः ॥ ९८ ॥
न तस्य पुनरावृत्तिर्मोदते स सुरैरपि ।
पुण्यपापैर्न लिप्येत एतदाचरणेन सः ॥ ९९ ॥

इस विधानसे योगी संसारमें सर्व दुःखसे रहित होके स्वेच्छा-चारी हो जायगा और इस आचरणसे योगी पुण्यपापमें लिप्त नहीं होगा न फिर संसारमें उसका जन्म होगा और देवतोके साथ आनन्द पूर्वक विचरेगा ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

सिद्धासनकथनम् ।

चतुरशीत्यासनानि सन्ति नानाविधानि च ।
तेभ्यश्चतुष्कमादाय मयोक्तानि ब्रवीम्यहम् ॥
सिद्धासनं ततः पद्मासनं चोग्रं च स्वस्तिकम् १००

बहुत प्रकारके चौरासी आसन हैं उनमें उत्तम जो चार आसन हैं उनको हम कहते हैं—सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन, स्वस्तिकासन।तात्पर्य यह है कि और आसन करनेसे नाडी शुद्ध होती है परन्तु यह चार आसनसे वायु धारण करके बैठनेमें कष्ट नहीं होता और प्रधान नाडी शीघ्र वश हो जाती है ॥ १०० ॥

योनिं संपीड्य यत्नेन पादमूलेन साधकः ।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत् योगवित् सदा ॥ १०१॥

ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः।
विशेषोऽवक्रकायश्च रहस्युद्वेगवर्जितः।
एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्॥१०२॥

योगवेत्ता साधक पादमूल अर्थात् एडीसे योनिस्थानको पीडित करे और दूसरे पादके एडीको मेढ्र अर्थात् लिंगके मूल स्थानपर रक्खे और ऊपर भ्रूके मध्यमें निश्चल दृष्टि रक्खे जितेन्द्रिय पुरुष विशेष सीधा शरीर करके विधानपूर्वक वेगवर्जित सावधान होके बैठ इसको सिद्धासन कहते हैं, यह आसन सिद्धोंको सिद्धि देनेवाला है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

येनाभ्यासवशात् शीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात्।
सिद्धासनं सदा सेव्यं पवनाभ्यासिना परम् ॥१०३॥

इस अभ्याससे जो पहिले कहा है शीघ्र योगका ज्ञान होता है इस हेतुसे यह सिद्धासन पवनाभ्यासीको सदा सेवनेके योग्यहै॥

येन संसारमुत्सृज्य लभते परमां गतिम्।
नातः परतरं गुह्यमासनं विद्यते भुवि ॥
येनानुध्यानमात्रेण योगी पापाद्विमुच्यते ॥ १०४ ॥

इस सिद्धासनके प्रभावसे साधक संसारको छोडके परमगतिको पाता है और इससे उत्तम वा गोप्य संसारमें दूसरा आसन नहीं है जिसके ध्यानमात्रसे योगी सर्वपापसे मुक्त होजाता है १०४

पद्मासनकथनम्।

उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः।
ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ॥१०५

नासाग्रे विन्यसेद्दृष्टिं दन्तमूलं च जिह्वया।
उत्तोल्य चिबुकं वक्ष उत्थाप्य पवनं शनैः॥ १०६॥
यथाशक्त्या समाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः।
यथाशक्त्यैव पश्चात्तु रेचयेदविरोधतः॥ १०७॥
इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनत्।
दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते परम्॥१०८॥

दोनों चरणको उत्तान करके यत्नसे ऊरू अर्थात् जंघापर रक्खे उसी प्रकार दोनों हाथको सीधा करके ऊरूके मध्यमें रक्खे और नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि और दांतके मूलमें जिह्वा स्थित करे और वक्ष अर्थात् हृदयस्थान चिबुक अर्थात् ठोडी स्थापन करे और अपानवायुको उठाके प्राणको शनैःशनैः यथा-शक्ति पूरक करके धारणा करे पश्चात् धीरे धीरे रेचक अर्थात् वायुको त्याग दे इसको पद्मासन कहते हैं। यह सर्वव्याधिका नाशक है यह आसन बहुत दुर्लभ है परंतु कोई बुद्धिमान् साध-कको प्राप्त होता है॥ १०५-१०८॥

अनुष्ठाने कृते प्राणः समश्चलति तत्क्षणात्।
भवेदभ्यासने सम्यक् साधकस्य न संशयः॥१०९॥

पूर्वोक्त अनुष्ठान करनेसे उसी समय प्राण सम होके सुषु-म्णामें प्रवेश करेगा अभ्याससे साधकका वायु सम होजायगा इसमें संशय नहीं॥ १०९॥

पद्मासने स्थितो योगी प्राणापानविधानतः।
पूरयेत् स विमुक्तः स्यात्सत्यं सत्यंवदाम्यहम्॥११०॥

ईश्वर श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं—पद्मासनास्थित योगी प्राण अपानके विधानसे वायु पूरण करेगा सो संसारबन्धनसे मुक्त होजायगा इसमें संशय नहीं है हम सत्य २ कहते हैं ॥ ११० ॥

उग्रासनकथनम् ।

प्रसार्य चरणद्वन्द्वं परस्परमसंयुतम् ।
स्वपाणिभ्यां दृढं धृत्वा जानूपरि शिरोन्यसेत् ॥ १११ ॥
आसनोग्रमिदं प्रोक्तं भवेदनिलदीपनम् ।
देहावसानहरणं पश्चिमोत्तानसंज्ञकम् ॥ ११२ ॥
य एतदासनं श्रेष्ठं प्रत्यहं साधयेत् सुधीः ।
वायुः पश्चिममार्गेण तस्य सञ्चरति ध्रुवम् ॥ ११३ ॥

दोनों चरणोंको संग परस्पर लम्बा करके दोनों हाथोंसे बलसे धरे और जानूपर शिरको स्थित करे इसको उग्रासन कहते हैं और पश्चिमतानभी संज्ञा है इससे वायुदीपन होता हैं और मृत्युका नाश करता है और यह सब आसनमें श्रेष्ठ है बुद्धिमान् इसको नित्य साधन करे तो उसका वायु पश्चिममार्गसे अवश्य सञ्चार करेगा ॥ १११-११३ ॥

एतदभ्यासशीलानां सर्वसिद्धिः प्रजायते ।
तस्माद्योगी प्रयत्नेन साधयेत् सिद्धमात्मनः ॥ ११४ ॥

ऐसे पूर्वोक्त अभ्यासमें जो लोग तत्पर हैं उनकी सर्व सिद्धि उत्पन्न होती है इस हेतुसे यत्न करके योगी आत्माके सिद्ध होनेकी साधना करे ॥ ११४ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्य चित् ।
येन शीघ्रं मरुत्सिद्धिर्भवेद्दुःखौघनाशिनी ॥ ११५ ॥

यह आसन जो पहले कहा है यत्नसे गोपनीय है, सबको देना उचित नहीं है परंतु अधिकारीको देना योग्य है इससे बहुत शीघ्र वायु सिद्ध हो जाता है और यह सिद्धि दुःखके समूहको नाश कर देनेवाली है ॥ ११५ ॥

स्वस्तिकासनकथनम् ।

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् धृत्वा पादतले उभे ।
समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥११६॥
अनेन विधिना योगी मारुतं साधयेत् सुधीः ।
देहेन क्रमते व्याधिस्तस्य वायुश्च सिध्यति ॥११७॥
सुखासनमिदं प्रोक्तं सर्वदुःखप्रणाशनम् ।
स्वस्तिकं योगिभिर्गोप्यं स्वस्तीकरणमुत्तमम् ११८

जानु और ऊरुके मध्यमें बराबर पादको ऊपर नीचे धरे और समकाय अर्थात् बराबर शरीर करके सुखपूर्वक बैठे उसको स्वस्तिकासन कहते हैं इस विधानसे बुद्धिमान् योगी वायुका साधन करे तो उसके शरीरमें व्याधि प्रवेश नहीं करती और उसको वायु सिद्ध हो जाती है इसको सुखासन कहते हैं; यह सर्व दुःखका नाशक है यह स्वस्तिकासन योगीलोगोंको गोप्य रखना उचित है इस कारणसे कि उत्तम कल्याणका कारक है॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगाभ्यास-
तत्त्वकथन नाम तृतीयपटलः समाप्तः ॥३॥

अथ चतुर्थपटलः ४.

अथ मुद्राकथनम्।

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे पूरयेन्मनः।
गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रवर्तते ॥ १ ॥

पहिले पूरक योग विधानसे.आधारपद्ममें वायुको मन सहित पूरक करके स्थित करे और गुदामेढ्रके मध्यमें जो योनि स्थान है उसको यत्नसे आकुञ्चन करनेमें प्रवृत्त होय ॥ १ ॥

योनिमुद्राकथनम्।

ब्रह्मयोनिगतं ध्यात्वा कामं कन्दुकसन्निभम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ २ ॥
तस्योर्ध्वं तु शिखा सूक्ष्मा चिद्रूपा परमा कला।
तया सहितमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

ब्रह्मयोनिके मध्यमें कामपुष्प अर्थात् कामबाणके समान कोटि सूर्यके सदृश प्रकाश और कोटि चंद्रमाके समान शीतल कामदेवका ध्यान करे और उसके ऊर्ध्वभागमें सूक्ष्म ज्योतिशिखा चैतन्यस्वरूपा परमाशक्तिसहित एकपरमात्माका चिन्तन करे॥

गच्छति ब्रह्ममार्गेण लिङ्गत्रयक्रमेण वै।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ ४ ॥
अमृतं तद्धि स्वर्गस्थं परमानन्दलक्षणम्।
श्वेतरक्तं तेजसाढ्यं सुधाधाराप्रवर्षिणम्।
पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत्कुलम् ॥ ५ ॥

इसी ब्रह्मयोनिसे जीव सुषुम्णा रन्ध्रद्वारा क्रमसे तीन लिङ्ग

अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारणस्वरूपसे प्रस्थान करता है और स्वर्गस्थ अमृत परम आनन्दका लक्षण श्वेत रक्त वर्ण कोटि-सूर्यके सदृश तेज प्रकाश और कोटि चन्द्रमाके समान शीतल सुधाधारावर्षी दिव्यकुलामृतको पान करके फिर योनिमण्डलमें स्थित होजाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

पुनरेव कुलं गच्छेन्मात्रायोगेन नान्यथा ।
सा च प्राणसमाख्याता ह्यस्मिंस्तन्त्रे मयोदिता ॥६॥
पुनःप्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशिवात्मकम् ।
योनिमुद्रा परा ह्येषा बन्धस्तस्याः प्रकीर्तितः ॥ ७॥
तस्यास्तु बन्धमात्रेण तन्नास्ति यं न साधयेत् ॥८॥

ब्रह्मयोनिसे प्राणायामयोग करके प्राण जाता है इस तंत्रमें जो हमने कहा है उस ब्रह्मयोनिको प्राणके समान कहते हैं ॥ फिर तीसरे वार काल अग्नि आदि शिवात्मक जीव प्रस्थान पूर्वक चन्द्रमण्डलमें दिव्य अमृतपान करके फिर ब्रह्मयोनिमें लय हो जाता है। हे देवि ! इस बन्धको योनिमुद्रा कहते हैं, केवल बन्धमात्रसे संसारमें असाध्य कोई वस्तु नहीं है अर्थात् सब सिद्ध हो सकता है ॥ ६–८ ॥

छिन्नरूपास्तु ये मन्त्राः कीलिताः स्तंभिताश्च ये ।
दग्धा मन्त्राः शिरोहीना मलिनास्तु तिरस्कृताः॥९॥
मन्दा बालास्तथा वृद्धाः प्रौढा यौवनगर्विताः ।
भेदिनो भ्रमसंयुक्ताः सताङ्गमूर्छिताश्च ये ॥ १० ॥

अरिपक्षे स्थिता ये च निर्वीर्याः सत्त्ववर्जिताः ।
तथा सत्त्वेन हीनाश्च खण्डिताः शतधा कृताः॥११॥
विधिनानेन संयुक्तः प्रभवन्त्याचिरेण तु ।
सिद्धिमोक्षप्रदाः सर्वे गुरुणा विनियोजिताः ॥ १२ ॥
यद्यदुच्चरते योगी मंत्ररूपं शुभाशुभम् ।
तत्सिद्धिं समवाप्नोति योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १३ ॥
दीक्षयित्वा विधानेन अभिषिंच्य सहस्रधा ।
ततो मंत्राधिकारार्थमेषा मुद्रा प्रकीर्तिता ॥ १४ ॥

जो मन्त्र छिन्नरूप हैं और कीलित हैं स्तम्भित हैं और जो मन्त्र दग्ध हैं शिरोहीन हैं मलीन हैं और जिनका अनादर हैं और मन्द हैं बाल हैं वृद्ध हैं प्रौढ हैं और जो यौवनगर्वित हैं और भेदित हैं भ्रमसंयुक्त हैं सप्ताहसे मूर्छित हैं और जो शत्रुके पक्षमें हैं निर्वीर्य हैं सत्त्वरहित हैं खण्डित हैं सौ खण्ड होगये हैं इस विधिसे युक्त होके साधन करनेसे शीघ्र प्रकर्ष करके सिद्ध हो जायगा । गुरुशिक्षासे सब सिद्ध और मोक्षप्रद होता जाता है। योगीसे जो मन्त्र शुभ वा अशुभरूप उच्चारण होता है सो सब योनिमुद्राके बन्धनमात्रसे सिद्ध हो जाता है विधानपूर्वक मंत्रके अधिकारार्थ गुरुको उचित है कि इस योनिमुद्राके दीक्षाका अभिषेक सहस्रधा शिष्यको करे ॥ ९--१४ ॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि त्रैलोक्यमपि घातयेत् ।
नासौ लिप्यति पापेन योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥१५॥

यदि एक सहस्र ब्रह्महत्या करे और त्रैलोक्यकाभी घात

कर दे अर्थात् प्राणिमात्रका नाश कर दे तोभी वह इस योनि-मुद्राके बन्धमात्रसे पापमें लिप्त न होगा ॥ १५ ॥

गुरुहा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
एतैः पापैर्न बध्येत योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १६ ॥

गुरुघातक मद्यपाई चोर गुरुकी शय्यामें रमणकरनेवाला ऐसे अनेक पातकसेभी साधक योनिमुद्राके बन्धप्रभावसे बन्धायमान न होगा ॥ १६ ॥

तस्मादभ्यासनं नित्यं कर्तव्यं मोक्षकांक्षिभिः ।
अभ्यासाज्जायते सिद्धिरभ्यासान्मोक्षमाप्नुयात् ॥ १७ ॥

इस हेतुसे मोक्षकांक्षीको उचित है कि नित्य अभ्यास करे अभ्याससे सिद्धि होती है और अभ्यासहीसे मुक्ति प्राप्त होतीहै॥

संविदं लभतेऽभ्यासात् योगोभ्यासात्प्रवर्तते ।
मुद्रिणां सिद्धिरभ्यासादभ्यासाद्वायुसाधनम् ॥ १८ ॥
कालवञ्चनमभ्यासात्तथा मृत्युञ्जयो भवेत् ।
वाक्सिद्धिः कामचारित्वं भवेदभ्यासयोगतः ॥ १९ ॥

अभ्याससे ज्ञान प्राप्त होता है और अभ्याससे योगमें प्रवृत्ति होती है और अभ्याससे मुद्रा सिद्ध होती है और अभ्याससे वायुका साधन होता है और अभ्याससे मनुष्य कालसे बचता है और अभ्यासहीसे मृत्युञ्जय हो जाता है और अभ्यासयोगसे वाक्यसिद्धि और मनुष्य इच्छाचारी हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सब वस्तुके सिद्धिका कारण अभ्यास है इस हेतुसे

आलस्यको छोडके जिस वस्तुमें मनुष्य अभ्यास करेगा वह अवश्य सिद्ध हो जायगा ॥ १८ ॥ १९ ॥

योनिमुद्रा परं गोप्या न देया यस्य कस्यचित् ।
सर्वथा नैव दातव्या प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ २० ॥

यह योनिमुद्रा परम गोपनीय है अनधिकारीको कदापि न दे यह सर्वथा देनेके योग्य नहीं है यदि कण्ठगतप्राण होजाँय तोभी देना उचित नहीं है ॥ २० ॥

अधुना कथयिष्यामि योगसिद्धिकरं परम् ।
गोपनीयं सुसिद्धानां योगं परमदुर्लभम् ॥ २१ ॥

हे देवि ! अब जो योग कहेंगे वह परम सिद्धिको देनेवाला है सिद्ध लोगोंको गोप्य रखना इस परम दुर्लभ योगका उचित है ॥

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली ।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ॥२२॥

गुरुके प्रसादसे निद्रिता कुण्डलिनी देवी जब जागृत होती है तब सर्व पद्म और सर्व ग्रंथी वेधित हो जाती हैं अर्थात् सुषुम्णा-रन्ध्रद्वारा प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रपर्यंत सञ्चार करने लगजाता है २२

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम् ।
ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत् ॥ २३ ॥

इस कारणसे यत्नपूर्वक ब्रह्मरन्ध्रके मुखमें जो ईश्वरी कुण्ड-लिनी देवी शयन करती हैं उनको उठानेके अर्थ मुद्राका अभ्यास करना उचित है ॥ २३ ॥

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ।
जालन्धरो मूलबन्धो विपरीतकृतिस्तथा ॥ २४ ॥
उड्डानं चैव वज्रोली दशमं शक्तिचालनम् ।
इदं हि मुद्रादशकं मुद्राणामुत्तमोत्तमम् ॥ २५ ॥

अब उत्तम मुद्राबन्ध वेध कहते हैं—महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरीमुद्रा, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, विपरीतकरणीमुद्रा, उड्डानबंध वज्रोलीमुद्रा, दशवीं शक्तिचालन मुद्रा ये दशों मुद्रा सबमें अतिउत्तम हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

महामुद्राकथनम् ।

महामुद्रां प्रवक्ष्यामि तन्त्रेऽस्मिन्मम वल्लभे ।
यां प्राप्य सिद्धाः सिद्धिं च कपिलाद्याः पुरा गताः॥२६॥

हे प्रिये ! इस तन्त्रमें महामुद्रा जो हम कहते हैं इसको लाभ करके पूर्व कपिल आदिक सिद्ध भये ॥ २६ ॥

अपसव्येन संपीड्य पादमूलेन सादरम् ।
गुरूपदेशतो योनिं गुदमेढ्रान्तरालगाम् ॥ २७ ॥
सव्यं प्रसारितं पादं धृत्वा पाणियुगेन वै ।
नव द्वाराणि संयम्य चिबुकं हृदयोपरि ॥ २८ ॥
चित्तं चित्तपथे दत्त्वा प्रभवेद्वायुसाधनम् ।
महामुद्रा भवेदेषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ २९ ॥
वामाङ्गेन समभ्यस्य दक्षाङ्गेनाभ्यसेत्पुनः ।
प्राणायामं समं कृत्वा योगी नियतमानसः ॥ ३० ॥

वामपादके एडीसे गुदा और मेढ़्के मध्यमें जो योनि है

उसको आदर सहित गुरुके उपदेशपूर्वक पीडित करे अर्थात् दबावे और दक्षिणपाद पसारके अर्थात् लम्बाकरके दोनों हाथोंसे धरे और नव द्वारोंको रोक करके चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदयपर स्थित करे और चित्त वृत्तिको चैतन्यमें स्थिर करके वायुका साधन करना उचित है। यह महामुद्रा सर्वतन्त्रोंके प्रमाणसे गोप्य है पहिले वामांगसे अभ्यास करके फिर दक्षिण अंगसे अभ्यास करे योगी स्थिरबुद्धिको उचित है कि इस प्रकारके प्राणायामको सम करे ॥ २७–३० ॥

अनेन विधिना योगी मन्दभाग्योऽपि सिध्यति ।
सर्वासामेव नाडीनां चालनं बिन्दुमारणम् ॥ ३१ ॥
जीवनं तु कषायस्य पातकानां विनाशनम् ।
कुण्डलीतापनं वायोर्ब्रह्मरन्ध्रप्रवेशनम् ॥ ३२ ॥
सर्वरोगोपशमनं जठराग्निविवर्धनम् ।
वपुषा कान्तिममलां जरामृत्युविनाशनम् ॥ ३३ ॥
वांछितार्थफलं सौख्यमिंद्रियाणाञ्च मारणम् ।
एतदुक्तानि सर्वाणि योगारूढस्य योगिनः ।
भवेदभ्यासतोऽवश्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३४ ॥

इस विधानोंसे मन्दभाग्य योगीभी सिद्ध होजायगा और इस महामुद्राके प्रभावसे सर्व नाडीका चलन सिद्ध होजायगा और बिंदु स्थिर होगा और जीवनको आकर्षित रक्खेगा और सर्व पातकका नाश हो जायगा और कुण्डलनीको हठात् उठाय वायुको ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करेगा औ जठराग्नि प्रज्वलित होके

सर्वरोगोंका नाश कर देगा और शरीरमें सुन्दर कान्ति होगी और वृद्धावस्थासहित मृत्युका नाश हो जायगा और सुखसहित वाञ्छित फल लाभ होगा और इन्द्रियोंका निग्रह रहेगा यह सब जो कहा है सो योगारूढ योगीको अभ्याससे वश हो जाता है इसमें संशय नहीं है निश्चय है ॥ ३१-३४ ॥

गोपनीया प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते।
यान्तु प्राप्य भवाम्भोधेः पारं गच्छन्ति योगिनः ३५
मुद्रा कामदुघा ह्येषा साधकानां मयोदिता।
गुप्ताचारेण कर्तव्या न देया यस्य कस्यचित् ॥३६॥

हे सुरपूजिते देवि! यह मुद्रा यत्न करके गोपनीय है योगी लोग इसको लाभ करके संसाररूपी समुद्रके पार होजाते हैं। देवि! यह मुद्रा जो हमने कही है साधकोंको कामधेनुरूप है अर्थात् वाञ्छितफलकी दाता है इसको गुप्त करके अर्थात् अभ्यास करना उचित है और सबको अर्थात् अनधिकारीको देना उचित नहीं है ॥ ३५--३६ ॥

महाबन्धकथनम्।

ततः प्रसारितः पादो विन्यस्य तमुरूपरि ॥ ३७ ॥
गुदयोनिं समाकुंच्य कृत्वा चापानमूर्ध्वगम्।
योजयित्वा समानेन कृत्वा प्राणमधोमुखम् ॥ ३८ ॥
बन्धयेदूर्ध्वगत्यर्थं प्राणापानेन यः सुधीः।
कथितोऽयं महाबन्धः सिद्धिमार्गप्रदायकः ॥ ३९ ॥
नाडीजालाद्रसव्यूहो मूर्धानं यान्ति योगिनः।
उभाभ्यां साधयेत्पद्भ्यामेकैकं सुप्रयत्नतः ॥ ४० ॥

तदनंतर पादको प्रसारके अर्थात् फैलाके दक्षिण चरणको वाम ऊरुपर स्थित करके और गुदा और योनिको आकुञ्चन करके अपानको ऊर्ध्व करके समानवायुके साथ सम्बन्ध करके और प्राणवायुको अधोमुख करे यह बन्ध प्राण अपानके ऊर्ध्व गतिके हेतु बुद्धिमान् साधकके प्रति कहा है और यह महाबन्ध सिद्धिमार्गका दाता है और योगी लोगोंके समूह नाडियोंके इस बन्धसे ऊपरको गमन करता है यह दोनों मुद्रा और बन्ध एक एकको दोनों अंगसे यत्न करके करना उचित है ॥ ३७-४० ॥

भवेदभ्यासतो वायुः सुषुम्णामध्यसङ्गतः ।
अनेन वपुषः पुष्टिर्दृढबन्धोऽस्थिपञ्जरे ॥ ४१ ॥
संपूर्णहृदयो योगी भवन्त्येतानि योगिनः ।
बन्धेनानेन योगीन्द्रः साधयेत्सर्वमीप्सितम् ॥ ४२ ॥

अभ्याससे प्राणवायु सुषुम्णाके मध्यमें स्थित होगा और इस महाबन्धके प्रभावसे शरीर पुष्ट रहेगा और हस्तिपंजर और शरीरका सब बन्ध दृढ अर्थात् बलिष्ठ हो जायगा और योगीका हृदय सन्तोषसे पूर्ण और आनन्दित रहेगा यह सब योगीको इस महाबन्धके प्रभावसे स्वयं लाभ हो जायगा और इसी बन्धके साधनसे योगी अपनी इच्छाके अनुसार सब सिद्ध कर लेगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

महावेधकथनम् ।

अपानप्राणयोरैक्यं कृत्वा त्रिभुवनेश्वरि ।
महावेधस्थितो योगी कुक्षिमापूर्य वायुना ।
स्फिचौ संताडयेद्धीमान् वेधोऽयं कीर्तितो मया ४३

हे त्रिभुवनेश्वरी! अपान और प्राणको एक करके महा-वेध स्थित योगी उदरको वायुसे पूर्ण करके बुद्धिमान् दोनों स्फिच अर्थात् पार्श्वको ताडन करे इसको हमने वेध कहा है४३॥

वेधेनानेन संविध्य वायुना योगिपुङ्गवः।
ग्रन्थिं सुषुम्णामार्गेण ब्रह्मग्रंथिं भिनत्त्यसौ ॥ ४४ ॥

बुद्धिमान् योगी इस वेधको गोपित करके सुषुम्णारन्ध्रद्वारा ब्रह्मग्रंथिको भेदन करता है ॥ ४४ ॥

यः करोति सदाभ्यासं महावेधं सुगोपितम्।
वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य जरामरणनाशिनी ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य इस उत्तम महावेधको गोपित करके सर्वदा अभ्यास करेगा उसकी जन्ममरण नाशिनी वायुसिद्धि हो जायगी॥४५॥

चक्रमध्ये स्थिता देवाः कम्पन्ति वायुताडनात्।
कुण्डल्यापि महामाया कैलासे सा विलीयते॥ ४६ ॥

शरीरस्थचक्रमें जो देवता हैं वह वायुके ताडनसे कम्पायमान होते हैं और महामाया कुण्डलिनी देवी कैलास अर्थात् ब्रह्मस्थानमें लय होती है। तात्पर्य यह है कि चक्रस्थित देवता अर्थात् गणेशजी ब्रह्मा विष्णु महादेवजी मायाधीश ज्योति-स्वरूप ईश्वर क्रमसे आधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञा चक्रमें जो स्थित हैं वायुके वेगसे चक्ररन्ध्रको छोड देते हैं तब वायुका प्रवेश होता है इस हेतुसे यह महावेध अवश्य करना उचित है ॥ ४६ ॥

महामुद्रामहाबन्धौ निष्फलौ वेधवर्जितौ ।
तस्माद्योगी प्रयत्नेन करोति त्रितयं क्रमात् ॥ ४७॥

महामुद्रा और महाबन्ध विना वेधके निष्फल हैं अर्थात् वेध न करनेसे मुद्रा और बन्धका कुछ फल न होगा इस हेतुसे योगीको उचित है कि यत्नपूर्वकक्रमसे तीनोंका अभ्यासकरे ॥

एतत्त्रयं प्रयत्नेन चतुर्वारं करोति यः ।
षण्मासाभ्यन्तरं मृत्युं जयत्येव न संशयः ॥ ४८ ॥

जो यह मुद्रा बन्ध वेध तीनोंका अभ्यास यत्न करके रात्रि दिवसमें चार वार करेगा सो छः मासमें निश्चय मृत्युको जीत लेगा इसमें संशय नहीं है ॥ ४८ ॥

एतत्त्रयस्य माहात्म्यं सिद्धो जानाति नेतरः ।
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे सिद्धिं सम्यक् लभन्ति वै४९

यह तीनोंके माहात्म्यको सिद्ध लोग जानते हैं इतर लोग अर्थात् संसारिक मनुष्य नहीं जानते इसके जानलेनेसे साधक लोगोंको सर्व सिद्धि लाभ होती है ॥ ४९ ॥

गोपनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिमीप्सुभिः ।
अन्यथा च न सिद्धिः स्यान्मुद्राणामेष निश्चयः॥५०॥

सिद्धिकांक्षी साधकको उचित है कि यह सब मुद्राको यत्नपूर्वक गोप्य रक्खे इनको प्रकाश करनेसे कदापि सिद्धि न होगी यह निश्चय है ॥ ५० ॥

खेचरीमुद्राकथनम्।

भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टिं विधाय सुदृढां सुधीः ॥ ५१ ॥
उपविश्यासने वज्रे नानोपद्रववर्जितः ।
लम्बिकोर्ध्वं स्थिते गर्ते रसनां विपरीतगाम् ॥५२॥
संयोजयेत् प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणः ।
मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः ॥ ५३ ॥
सिद्धीनां जननी ह्येषा मम प्राणाधिकाप्रिया ।
निरन्तरकृताभ्यासात्पीयूषं प्रत्यहं पिबेत् ।
तेन विग्रहसिद्धिः स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ५४ ॥

बुद्धिमान साधक दोनों भ्रू अर्थात् भ्रुकुटीके मध्यमें दृढ करके दृष्टिको स्थिर करके और नाना उपद्रव रहित होके वज्रासन अर्थात् सिद्धासनसे स्थित होयके जिह्वाको विपरीत अर्थात् ऊपर सुधाकूपस्वरूप तालूविवरमें यत्नसे बुद्धिमान् साधक संयोजित करे अर्थात् संबन्ध करे। हे पार्वति! भक्तोंके प्रति हमने प्रकाश करके यह खेचरी मुद्रा कही है यह खेचरीमुद्रा सर्वसिद्धिकी माता है और हे देवी! हमको प्राणसेभी अधिक प्रिय है जो निरन्तर इस अभ्याससे नित्य अमृतपान करता है उस कारणसे शरीर सिद्ध हो जाता है अर्थात् नाश नहीं होता और मृत्युरूप हस्तीका यह खेचरीरूपी सिंह हन्ता है॥५१--५४॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
खेचरी यस्य शुद्धा तु स शुद्धो नात्र संशयः ॥५५॥

अपवित्र होय वा पवित्र होय अथवा किसी अवस्थामें होय

जिसको यह खेचरी मुद्रा सिद्ध है यह सर्वदा शुद्ध है इसमें संशय नहीं है ॥ ५५ ॥

क्षणार्धं कुरुते यस्तु तीर्त्वा पापमहार्णवम् ।
दिव्यभोगान् प्रभुक्त्वा च सत्कुले स प्रजायते॥५६॥

जो इस खेचरीमुद्राको क्षणार्धभी करेगा वह महापाप सागरके पार होके सुखपूर्वक स्वर्गका भोग भोगेगा पश्चात् उत्तम कुलमें उसका जन्म होगा ॥ ५६ ॥

मुद्रैषा खेचरी यस्तु सुस्थचित्तो ह्यतन्द्रितः ।
शतब्रह्मगतेनापि क्षणार्धं मन्यते हि सः ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य इस खेचरीमुद्राको स्वस्थ चित्त ब्रह्मपरायण होके करेगा उसको यदि शत ब्रह्माभी गतभावको प्राप्त हों ऐसा क्षणार्ध प्रतीत होगा ॥ ५७ ॥

गुरूपदेशतो मुद्रां यो वेत्ति खेचरीमिमाम् ।
नानापापरतो धीमान् स याति परमां गतिम्॥५८॥

गुरूपदेशसे जिसको यह खेचरीमुद्रा लाभ होगी वह यदि नानापापरत होगा तोभी बुद्धिमान् साधक परमगतिको प्राप्त होगा अर्थात् मोक्ष हो जायगा ॥ ५८ ॥

सा प्राणसदृशी मुद्रा यस्मिन् कस्मिन् न दीयते ।
प्रच्छाद्यते प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते ॥ ५९ ॥

हे सुरपूजिते पार्वती ! यह खेचरीमुद्रा प्राणके बराबर है सामान्य मनुष्यको देना उचित नहीं है इस मुद्राका यत्न करके गोपित रखनेमें कल्याण है ॥ ५९ ॥

जालन्धरबन्धकथनम्।

बद्ध्वा गलशिराजालं हृदये चिबुकं न्यसेत्।
बन्धो जालन्धरः प्रोक्तो देवानामपि दुर्लभः॥ ६० ॥
नाभिस्थवह्निर्जन्तूनां सहस्रकमलच्युतम्।
पिबेत्पीयूषविस्तारं तदर्थं बन्धयेदिमम्॥ ६१ ॥

गुरूपदेशद्वारा गलशिराजको बांधके चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदयमें स्थित करे इसको जालन्धर बन्ध कहते हैं। यह देवतों-कोभी दुर्लभ है नाभिस्थित जीव जठरानल सहस्रदल कमलसे जो अमृत स्रवता है उसको पान कर जाता है इस हेतुसे यह जालन्धरबन्ध करना उचित है। तात्पर्य यह है कि नाभिस्थित सूर्य अमृतको पान कर जाते हैं इसी कारणसे मृत्यु होती है इस जालन्धरबन्धके करनेसे चंद्रमण्डलच्युत अमृत सूर्य मण्डलमें नहीं जाता, योगी आपही पान करके चिरंजीव रहता है ६१

बन्धेनानेन पीयूषं स्वयं पिबति बुद्धिमान्।
अमरत्वञ्च सम्प्राप्य मोदते भुवनत्रये॥ ६२ ॥

इस जालन्धरबन्धके प्रभावसे बुद्धिमान् योगी स्वयं अमृत पान करता है और अमरत्वको पायके तीनों लोकमें आनन्द पूर्वक विचरता है॥ ६२ ॥

जालन्धरो बन्ध एष सिद्धानां सिद्धिदायकः।
अभ्यासः क्रियते नित्यं योगिना सिद्धिमिच्छता॥ ६३ ॥

यह जालन्धरबन्ध सिद्धोंको सिद्धि देनेवाला है इस कारणसे सिद्धिकांक्षी योगीको इसका नित्य अभ्यास करना उचितहै॥ ६३

मूलबन्धकथनम् ।

पादमूलेन संपीड्य गुदमार्गेषु यन्त्रितम् ॥ ६४ ॥
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं सुचारयेत् ।
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः ॥ ६५ ॥

पादमूल अर्थात् एडीसे गुदामार्गको आकुञ्चन करके पीडित करे और बलसे अपानवायुको आकर्षण करके ऊर्ध्वको लेजाय अर्थात् प्राणके साथ सम्बन्ध करे इसको मूलबन्ध कहते हैं यह बन्ध जरा मरणका नाशकरनेवाला है ॥ ६४–६५ ॥

अपानप्राणयोरैक्यं प्रकरोत्यधिकल्पितम् ।
बन्धेनानेन सुतरां योनिमुद्रा प्रसिद्धयति ॥ ६६ ॥

इस कल्पितबंधसे अपान और प्राणको एक करे और इसी मूलबंधके प्रभावसे योनिमुद्रा आपही सिद्ध हो जायगी ॥ ६६ ॥

सिद्धायां योनिमुद्रायां किं न सिध्यति भूतले ।
बन्धस्यास्य प्रसादेन गगने विजितानिलः ।
पद्मासने स्थितो योगी भुवमुत्सृज्य वर्तते ॥ ६७ ॥

योनिमुद्राके सिद्ध होनेसे सिद्ध लोगोंको इस संसारमें सब सिद्ध हो सकता है इस मूलबन्धके प्रसादसे वायुको योगी जितके पद्मासन स्थित होके भूमिको त्याग देगा और आकाशमें गमन करेगा ॥ ६७ ॥

सुगुप्ते निर्जने देशे बन्धमेनं समभ्यसेत् ।
संसारसागरं तर्तुं यदीच्छेद्योगिपुङ्गवः ॥ ६८ ॥

पवित्र योगी यदि संसारसागरसे पार होनेकी इच्छा करे तो

निर्जन देश और गुप्तस्थानमें इस मूलबन्धका अभ्यास करना उचित है ॥ ६८ ॥

विपरीतकरणीमुद्राकथनम्।

भूतले स्वशिरो दत्त्वा खे नयेच्चरणद्वयम्।
विपरीतकृतिश्चैषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ६९ ॥

साधक अपने शिरको भूमिपर धरे और दोनों चरणको ऊपर आकाशमें निरालम्ब स्थित करे यह विपरीतकरणीमुद्रा सर्वतन्त्रोंकरके गोपित है अर्थात् प्रकाश करने योग्य नहीं है ६९

एतद् यः कुरुते नित्यमभ्यासं याममात्रतः।
मृत्युं जयति योगीशः प्रलयेनापि सीदति ॥ ७० ॥

इस प्रकारसे इस मुद्राका अभ्यास नित्य एक प्रहर करे तो योगी निश्चय मृत्युको जीत लेगा और प्रलयमें उसको कुछ कष्ट न होगा ॥ ७० ॥

कुरुतेऽमृतपानं यः सिद्धानां समतामियात्।
स सेव्यः सर्वलोकानां बन्धमेनं करोति यः ॥ ७१॥

जो पुरुष शरीरस्थ अमृतपान करता है उसको सिद्धोंकी समता प्राप्त होती है और इस मुद्राबंधको जो करता है वह सर्वलोकमें पूजनीय है ॥ ७१ ॥

उड्डयानबन्धकथनम्।

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि तानं पश्चिममाचरेत्।
उड्डयानबंध एष स्यात्सर्वदुःखौघनाशनः ॥ ७२ ॥
उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डयानाख्योऽत्र बन्धोऽयं मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ७३ ॥

नाभिसे ऊपर और नीचेको आकुञ्चन करे इसको उड्डयान् बन्ध कहते हैं यह दुःखके समूहको नाश करनेवाला है उदरको पीछे आकर्षण करे और नाभिसे ऊपर भागमें आकुञ्चन करे यह उड्डयानबन्ध है और मृत्युरूपी मातङ्गका नाश करनेवाला यह बन्धरूपी सिंह है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने ।
तस्य नाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येन सिद्धो भवेन्मरुत्७४

जो योगी नित्य इस बन्धको चार वार अभ्यास करेगा उसका नाभिचक्र शुद्ध होके वायु सिद्ध हो जायगा ॥ ७४ ॥

षण्मासमभ्यसन्योगी मृत्युं जयति निश्चितम् ।
तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिः प्रजायते ॥ ७५ ॥

योगी यदि छः मास इस बन्धका अभ्यास करे तो निश्चय मृत्युको जीत लेगा और उसका जठरानल विशेष प्रज्वलित होगा और रसकी वृद्धि उत्पन्न होगी ॥ ७५ ॥

अनेन सुतरां सिद्धिर्विग्रहस्य प्रजायते
रोगाणां संक्षयश्चापि योगिनो भवति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

इस उड्डयानबन्धके प्रभावसे योगीका शरीर आपही सिद्ध हो जायगा अर्थात् अमर हो जायगा और रोगोंका निश्चय क्षय हो जायगा ॥ ७६ ॥

गुरोर्लब्ध्वा प्रयत्नेन साधयेत्तु विचक्षणः ।
निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परमदुर्लभम् ॥ ७७ ॥

गुरुसे यत्न पूर्वक इस परमदुर्लभ वन्धको लाभ करके बुद्धिमान् साधक एकान्त स्थानमें स्वस्थचित्त होके साधन करे ७७

वज्रोलीमुद्राकथनम्।

वज्रोली कथयिष्यामि संसारध्वान्तनाशिनीम् ।
स्वभक्तेभ्यः समासेन गुह्याद्गुह्यतमामपि ॥ ७८ ॥

हे देवी ! संसारतमनाशिनी परमगोपनीय वज्रोलीमुद्रा भक्तलोगोंके प्रति हम कहते हैं ॥ ७८ ॥

स्वेच्छया वर्तमानोऽपि योगोक्तनियमैर्विना ।
मुक्तो भवति गार्हस्थो वज्रोल्यभ्यासयोगतः ॥ ७९ ॥

गृहस्थ अपनी इच्छा पूर्वक गृहमें भोग करेगा और योगमें जो नियम कहा है उसके विना इस वज्रोलीमुद्राके योगाभ्याससे मुक्त हो जायगा ॥ ७९ ॥

वज्रोल्यभ्यासयोगोऽयं भोगे युक्तेऽपि मुक्तिदः ।
तस्मादतिप्रयत्नेन कर्तव्यो योगिभिः सदा ॥ ८० ॥

यह वज्रोलीका योगाभ्यास भोगयुक्त मनुष्योंके प्रति मुक्तिका दाता है इस कारणसे अतियत्न करके सर्वदा योगीको अभ्यास करना उचित है ॥ ८० ॥

आदौ रजः स्त्रियो योन्या यतेन विधिवत्सुधीः ।
आकुंच्य लिंगनालेन स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥ ८१ ॥
स्वकं बिंदुञ्च सम्बन्ध्य लिंगचालनमाचरेत् ।
दैवाच्चलति चेदूर्ध्वं निवद्धो योनिमुद्रया ॥ ८२ ॥
वाममार्गेऽपि तद्बिन्दुं नीत्वा लिङ्गं निवारयेत् ।
क्षणमात्रं योनितो यः पुमांश्चालनमाचरेत् ॥ ८३ ॥

गुरूपदेशतो योगी हुंहुंकारेण योनितः ।
अपानवायुमाकुंच्य बलादाकृष्य तद्रजः ॥ ८४ ॥

प्रथम बुद्धिमान् साधक यत्न करके विधान पूर्वक स्त्रीकी योनिसे रजको लिङ्गनालमें आकर्षण करके अपने शरीरमें प्रवेश करे और अपने बिन्दुको निरोध करके लिङ्गचालन करे यदि दैवात् बिन्दु अपने स्थानसे चले तो योनिमुद्रासे निरोध करके ऊपरको आकर्षण करे और उस बिन्दुको वामभागमें स्थित करके क्षणमात्र लिङ्गचालन निवारण करे फिर गुरूपदेशद्वारा योगी हुंहुंकार शब्द उच्चारण पूर्वक योनिमें लिङ्गचालन करे और बलसे अपानवायुको आकुञ्चन करके स्त्रीके रजको आकर्षण करे इसको वज्रोलीमुद्रा कहते हैं ॥ ८१–८४ ॥

अनेन विधिना योगी क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ।
गव्यभुक् कुरुते योगी गुरुपादाब्जपूजकः ॥ ८५ ॥

इस विधानसे योगीको शीघ्र योग सिद्ध होगा और गुरुपादपद्मपूजक योगी शरीरस्थ अमृत पान करेगा ॥ ८५ ॥

बिन्दुर्विधुमयो ज्ञेयो रजः सूर्यमयस्तथा ।
उभयोर्मेलनं कार्यं स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥ ८६ ॥

बिन्दुरूपी चन्द्र और रजरूपी सूर्य यह जानकर दोनोंका सम्बन्ध करके अपने शरीरमें प्रवेश करना उचित है ॥ ८६ ॥

अहं बिन्दू रजः शक्तिरुभयोर्मेलनं यदा ।
योगिनां साधनावस्था भवेद्दिव्यं वपुस्तदा ॥ ८७ ॥

यदि शिवरूपी बिन्दु और रजरूपी शक्ति यह दोनोंका सम्बन्ध

होगा तब योगीका साधनसे दिव्य शरीर अर्थात् देवतोंके समान शरीर होगा। तात्पर्य यह है कि शिवशक्ति अर्थात् माया ईश्वरके सम्बन्ध वा मायाको ईश्वरमें लय करनेसे जिसको अध्यारोप अपवाद कहते हैं योगी मोक्ष होता है। अभिप्राय यह है कि रज बिन्दुका सम्बन्ध जिस साधकको सिद्ध हो जाता है वह मुक्त है ॥ ८७ ॥

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणे।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम् ॥ ८८ ॥

बिन्दुपात होनेसे मृत्यु होती है और बिन्दुके धारणसे प्राणी जीवता है इस कारणसे यत्नसे बिन्दुको धारण करना उचित है॥

जायते म्रियते लोके बिन्दुना नात्र संशयः।
एतज्ज्ञात्वा सदा योगी बिन्दुधारणमाचरेत् ॥ ८९ ॥

प्राणीका जन्म मरण बिन्दुसे होता है इसमें संशय नहीं है इस हेतुसे इसको विचारके योगीको उचित है कि बिन्दुको सर्वदा धारण रक्खे ॥ ८९ ॥

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशो भवेत् ॥ ९०॥

हे पार्वती ! यत्नपूर्वक बिन्दुके सिद्ध होनेसे संसारमें क्या नहीं सिद्ध हो सकता अर्थात् सब सिद्ध हो सकता है इसीके प्रसादसे हमारी ऐसी महिमा है ॥ ९० ॥

बिन्दुः करोति सर्वेषां सुखं दुःखं च संस्थितः।
संसारिणां विमूढानां जरामरणशालिनाम् ॥ ९१ ॥

अयं च शांकरो योगो योगिनामुत्तमोत्तमः ॥ १२ ॥

बिन्दु संसारी मनुष्योंके सुख और दुःखका कारण है और मूढ लोगोंको मूढताका और जरामरणशील लोगोंका अर्थात् सबका यह हमारा उत्तमं योग है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति भोगयुक्तोऽपि मानवः ।
सकलः साधितार्थोऽपि सिद्धो भवति भूतले ॥१३॥

भोगयुक्त मनुष्योंकोभी अभ्याससे सिद्धि प्राप्त होती है और सकल वाञ्छित फल संसारमें सिद्ध हो जाता है ॥ १३ ॥

भुक्त्वा भोगानशेषान् वै योगेनानेन निश्चितम् ।
अनेन सकला सिद्धिर्योगिनां भवति ध्रुवम् ।
सुखभोगेन महता तस्मादेनं समभ्यसेत् ॥ १४ ॥

इस योगाभ्यासद्वारा निश्चय अशेषभोग भोगनेसे सुखी होगा और योगीलोगोंको इस वज्रोलीमुद्रासे सकल सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है और महान सुख भोगते हुए यह साधना सिद्ध होगी इसलिये इसका अभ्यास करना उचित है ॥ १४ ॥

सहजोल्यमरोली च वज्रोल्या भेदतो भवेत् ।
येन केन प्रकारेण बिन्दुं योगी प्रधारयेत् ॥ १५ ॥

वज्रोलीके भेदसे सहजोली और अमरोली मुद्राकी संज्ञा है योगीको उचित है कि सब प्रकारसे बिन्दुको धारण करे॥१५॥

दैवाच्चलति चेद्वेगे मेलनं चन्द्रसूर्ययोः ।
अमरोलिरियं प्रोक्ता लिंगनालेन शोषयेत् ॥ १६ ॥

यदि हठात् वेगवश बिन्दु चले और रजबिन्दुका सम्बन्ध

हो जाय तो इसको अमरोली कहते हैं परन्तु लिङ्गनालद्वारा रजबिन्दु दोनोंको शोषण करे ॥ ९६ ॥

गतं बिन्दुं स्वकं योगी बन्धयेद्योनिमुद्रया।
सहजोलीरियं प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥ ९७॥

निज बिन्दु चलायमान होय तो योगी योनिसुद्राके बन्धसे अवरोध करे इसको सहजोली कहते हैं यह सर्व तन्त्रोंकरके गोपनीय है ॥ ९७ ॥

संज्ञाभेदाद्भवेद्भेदः कार्यं तुल्यगतिर्यदि।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साध्यते योगिभिः सदा ॥९८॥

यदि कार्य एक समान है परन्तु संज्ञासे अमरोली और सहजोली दो भेद भये हैं इस हेतुसे योगीको उचित है कि यह दोनों अमरोली और सहजोलीका यत्नपूर्वक सर्वदा साधन करे९८

अयं योगो मया प्रोक्तो भक्तानां स्नेहतः प्रिये।
गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्य चित् ॥९९॥

हे प्रिये पार्वती! हम भक्तोंपर प्रेम करके यह योग जो कहा है सो यत्नपूर्वक गोपनीय है सामान्य मनुष्यको कदापि देना उचित नहीं है ॥ ९९ ॥

एतद्गुह्यतमं गुह्यं न भूतं न भविष्यति।
तस्मादेतत्प्रयत्नेन गोपनीयं सदा बुधैः ॥ १०० ॥

इस वज्रोलीमुद्रासे अधिक गोपनीय न कुछ भया है न होगा इस कारणसे बुद्धिमान् साधकको यत्नपूर्वक इसको गोप्य रखना उचित है ॥ १०० ॥

स्वमूत्रोत्सर्गकाले यो बलादाकृष्य वायुना ।
स्तोकं स्तोकं त्यजेन्मूत्रमूर्ध्वमाकृष्य तत्पुनः॥१०१
गुरूपदिष्टमार्गेण प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
बिन्दुसिद्धिर्भवेत्तस्य महासिद्धिप्रदायिका ॥ १०२ ॥

गुरुके उपदेशपूर्वक सर्वदा मूत्र त्यागनेके समय बलकरके वायुसे आकर्षणपूर्वक थोडा २ मूत्र त्याग करे फिर ऊपरको आकर्षण करे तो उसका बिन्दु सिद्ध हो जायगा। यह बिन्दुकी सिद्धी महासिद्धिकी दाता है अर्थात् परमपदको प्राप्तकरती है॥

षण्मासमभ्यसेद्यो वै प्रत्यहं गुरुशिक्षया ।
शताङ्गनेऽपि भोगेऽपि तस्य बिन्दुर्न नश्यति१०३॥

गुरुके शिक्षापूर्वक योगी यदि छः मास नित्य इसका अभ्यास करे तो शत स्त्रीसे भोग करेगा तोभी उसका बिन्दुपात न होगा ॥ १०३ ॥

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति पार्वति ।
ईशत्वं यत्प्रसादेन ममापि दुर्लभं भवेत् ॥ १०४ ॥

हे पार्वती ! जब महायत्नसे बिन्दु सिद्ध हो जायगा तब क्या नहीं सिद्ध होगा अर्थात् सब सिद्ध हो जायगा इसके प्रसादसे यह दुर्लभ ईशत्व हमको प्राप्त भया है ॥ १०४ ॥

शक्तिचालनमुद्राकथनम् ।

आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढाम् ।
अपानवायुनारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान् ।
शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ १०५ ॥

शक्तिचालनमेवं हि प्रत्यहं यः समाचरेत्।
आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य रोगाणां च विनाशनम् ॥१०६॥
विहाय निद्रां भुजगी स्वयमूर्ध्वं भवेत्खलु।
तस्मादभ्यासनं कार्यं योगिना सिद्धिमिच्छता १०७
यः करोति सदाभ्यासं शक्तिचालनमुत्तमम्।
येन विग्रहासिद्धिः स्यादणिमादिगुणप्रदा ॥ १०८॥
गुरूपदेशविधिना तस्य मृत्युभयं कुतः।
मुहूर्तद्वयपर्यन्तं विधिना शक्तिनाशनम् ॥ १०९ ॥
यः करोति प्रयत्नेन तस्य सिद्धिरदूरतः।
युक्तासनेन कर्तव्यं योगिभिः शक्तिचालनम्॥११०॥
एतत्सुमुद्रादशकं न भूतं न भविष्यति।
एकैकाभ्यासने सिद्धिः सिद्धो भवति नान्यथा॥ ११

आधारकमलमें घोर निद्रित कुण्डलनीको बुद्धिमान् अपानवायुपर आरूढ होके आकर्षणपूर्वक हठात् चलावे अर्थात् भ्रमावे यह शक्तिचालनमुद्रा सर्वशक्तिकी दाता है यह शक्तिचालनमुद्रा जो प्रतिदिन करे तो उसके आयुकी वृद्धी होगी और सर्वरोगोंका इस मुद्राके प्रभावसे नाश होजायगा, इस शक्तिचालनके साधनसे कुण्डलनी निद्राको त्यागके आपही ऊर्ध्वगामी हो जायगी यह निश्चय है इस हेतुसे सिद्धिकी इच्छा करनेवाले योगीको उचित है कि इसका अभ्यास करे यदि इस उत्तमशक्तिचालनमुद्राका सदा अभ्यास करे तो उसका शरीर सिद्ध अर्थात् अमर हो जायगा और यह मुद्रा अणिमादिक

सिद्धिकी दाता है गुरुके उपदेशपूर्वक विधानसे जो इसका अभ्यास करे तो उसको मृत्युका भय नहीं है जो विधानपूर्वक यत्नसे यदि दो मुहूर्त पर्यंत शक्तिचालन करे तो उसको सर्वसिद्धिकी प्राप्ति होगी। योगीको उचित है कि गुरुके उपदेशानुसार योग आसनसे युक्त होके शक्तिचालनका अभ्यास करे। हे पार्वति ! यह दश मुद्रा जो हमने कही हैं इसके समान न कुछ भया है न होगा इसके एक एकके अभ्यास सिद्ध होनेसे साधक सिद्ध हो जायगा ॥ १०५--१११ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे मुद्राकथन नाम चतुर्थपटलः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पंचमपटलः ५.

श्रीदेव्युवाच ।

ब्रूहि मे वाक्यमीशान परमार्थधियं प्रति ।
ये विघ्नाः सन्ति लोकानां वद मे प्रिय शंकर ॥ १ ॥

श्रीपार्वतीजी कहती हैं कि हे ईश्वर ! हे प्रिय शंकर ! योगाभ्यासी लोगोंके प्रति जो विघ्न संसारमें हैं सो भक्तोंपर कृपा करके हमको कहो ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा विघ्नाः स्थिताः सदा ।
मुक्तिं प्रति नराणां च भोगः परमबन्धनः ॥ २ ॥

श्रीईश्वर कहते हैं कि हे देवि ! योगसाधनमें जो विघ्न हैं सो हम कहते हैं सुनो—मनुष्योंके मुक्तिके प्रति भोग परमबन्धन है ॥ २ ॥

भोगरूपयोगविघ्नविद्याकथनम्।

नारी शय्यासनं वस्त्रं धनमस्य विडम्बनम्।
ताम्बूलभक्षयानानि राज्यैश्वर्यविभूतयः॥ ३॥
हैमं रौप्यं तथा ताम्रं रत्नं चागुरुधेनवः।
पाण्डित्यं वेदशास्त्राणि नृत्यं गीतं विभूषणम्॥ ४॥
वंशी वीणा मृदङ्गाश्च गजेंद्रश्चाश्ववाहनम्।
दारापत्यानि विषया विघ्ना एते प्रकीर्तिताः।
भोगरूपा इमे विघ्ना धर्मरूपानिमान् शृणु॥ ५॥

नारीसंसर्ग शय्या उत्तम आसन वस्त्र धन यह सब मोक्षके प्रति विडम्बना हैं। ताम्बूलसेवन रथ शिबिका आदि सवारी राज्य ऐश्वर्यभोग स्वर्ण रजत ताम्र अनेक प्रकारके रत्न गोधन आदिका संग्रह पाण्डित्यकरना वेदशास्त्रमें तर्क करना नृत्य गीत भूषण वंशी वीणा मृदङ्गादिक वाद्य बजाना गज अश्व आदि वाहन स्त्री पुत्र केवल गुरुकी सेवा छोडके हे पार्वति! यह जो कहा है सो भोगरूप विघ्न हैं अब धर्मरूप विघ्न कहते हैं श्रवण करो॥ ३-५॥

धर्मरूपयोगविघ्नकथनम्।

स्नानं पूजाविधिर्होमं तथा मोक्षमयी स्थितिः।
व्रतोपवासनियमा मौनमिन्द्रियनिग्रहः॥ ६॥
ध्येयो ध्यानं तथा मन्त्रो दानं ख्यातिर्दिशासु च।
वापीकूपतडागादिप्रासादारामकल्पना॥ ७॥
यज्ञं चान्द्रायणं कृच्छ्रं तीर्थानि विविधानि च।
दृश्यन्ते च इमे विघ्ना धर्मरूपेण संस्थिताः॥ ८॥

स्नान पूजाविधि होम और सुखपूर्वक स्थिति व्रत उपवास नियम मौन इन्द्रियनिग्रह ध्येय किसीका ध्यान करना मन्त्र जप दान सर्वत्र प्रसिद्ध होना बावडी कूप तालाव मन्दिर बगीचा आदिक बनवाना यज्ञ करना पापक्षयके हेतु चान्द्रायण कृच्छ्र-व्रत करना तीर्थोंमें भ्रमण करना यह सब धर्मरूप विघ्नहैं॥६-८

ज्ञानरूपविघ्नकथनम् ।

यत्तु विघ्नं भवेज्ज्ञानं कथयामि वरानने ।
गोमुखं स्वासनं कृत्वा धौतिप्रक्षालनं च तत् ॥ ९ ॥
नाडीसञ्चारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम् ।
कुक्षिसंचालनं क्षिप्रं प्रवेश इन्द्रियाध्वना ।
नाडीकर्म्माणि कल्याणि भोजनं श्रूयतां मम ॥ १० ॥

हे वरानने ! अब ज्ञानरूप विघ्न कहते हैं सुनो—अन्तः शुद्धिके अर्थ गोमुखके सदृश वस्त्र भक्षण करके तब धौति प्रक्षालन करना अर्थात् धौतियोग करना नाडीचालनका ज्ञान वायुका प्रत्याहार निरोध करना कुण्डलनीके बोधार्थ उदरको भ्रमावना इन्द्रियद्वारा शीघ्र प्रवेश नाडीकर्म अर्थात् नाडी शुद्धिके हेतु आहारीय विचार सब ज्ञानरूप विघ्न हैं। हे देवि कल्याणि ! नाडी-शुद्धीके अर्थ जो भोजनविधि है सो हम कहते हैं सुनो ९॥१०॥

नवधातुरसं छिन्धि शुण्ठिकास्ताडयेत् पुनः ।
एककालं समाधिः स्याल्लिङ्गभूतामिदं शृणु ॥ ११ ॥

नवीन रस सहित भोजन वस्तु और शुण्ठी चूर्ण भोजन करे इससे शीघ्र समाधि हो जायगी हे देवि ! अब उसका चिह्न कहते हैं सुनो ॥ ११ ॥

सङ्गमं गच्छ साधूनां सङ्कोचं भज दुर्जनात् ।
प्रवेशनिर्गमे वायोर्गुरुलक्षं विलोकयेत् ॥ १२ ॥

साधुके सङ्गकी अभिलाषा और दुर्जनसे अलग रहनेका विचार रखना और वायुका निर्गममें प्रवेश करना और वायुके निरोध समय मात्रासे गुरु लघुके विचारार्थ संख्या करना १२

पिण्डस्थं रूपसंस्थञ्च रूपस्थं रूपवर्जितम् ।
ब्रह्मैतस्मिन्मतावस्था हृदयं च प्रशाम्यति ।
इत्येते कथिता विघ्ना ज्ञानरूपे व्यवस्थिताः ॥ १३ ॥

शरीरस्थरूपका विचार रखना और रूप कुरूपका निर्णय करना और यह जगत् ब्रह्म है ऐसे विचारसे हृदयमें स्थिरता रखना। हे पार्वति! यह जो कहा है सो सब ज्ञानरूप विघ्न हैं १३

चतुर्विधयोगकथनम् ।

मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगस्तृतीयकः ।
चतुर्थो राजयोगः स्यात्स द्विधाभाववर्जितः ॥ १४ ॥

योग चार प्रकारका है—मन्त्रयोग हठयोग और तीसरा लययोग और चौथा राजयोग है। यह राजयोग द्वैतभावसे रहित है अर्थात् राजयोग सिद्ध हो जानेसे जीव ईश्वरमें लय हो जाता है और कुछ बोध नहीं होता ॥ १४ ॥

चतुर्धा साधको ज्ञेयो मृदुमध्याधिमात्रकाः ।
अधिमात्रतमः श्रेष्ठो भवाब्धौ लंघनक्षमः ॥ १५ ॥

यह योगचतुष्टयके साधकभी चार प्रकारके होते हैं—मृदु, मध्यम, अधिमात्र, अधिमात्रतम। यह अधिमात्रतम साधक सबमें श्रेष्ठ है यही साधक संसाररूपी समुद्रके पार होनेमें समर्थ होता॥

मृदुसाधकलक्षणम् ।

मन्दोत्साही सुसंमूढो व्याधिस्थो गुरुदूषकः ।
लोभी पापमतिश्चैव बह्वाशी वनिताश्रयः ॥ १६ ॥
चपलः कातरो रोगी पराधीनोऽतिनिष्ठुरः ।
मंदाचारो मन्दवीर्यो ज्ञातव्यो मृदुमानवः ॥१७ ॥
द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धिरेतस्य यत्नतः परम् ।
मन्त्रयोगाधिकारी स ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम्॥ १८ ॥

अब मृदुसाधकलक्षण कहते हैं–मन्द उत्साही मूढ चित्त व्याधिग्रसित गुरुनिन्दक लोभी जिसकी सर्वदा पापबुद्धि रहे बहुत भोजन करनेवाला स्त्रीके वशमें हो चञ्चल हो कातर हो रोगी हो पराधीन हो कठोर बोलनेवाला हो जिसके मन्द कर्म हो मंदवीर्यवाला हो ऐसे पुरुषको मृदुमानव कहते हैं। यह मंत्र-योगका अधिकारी है यत्न करनेसे और गुरुके कृपासे इसकोभी बारह वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी ॥ १६--१८ ॥

समबुद्धिः क्षमायुक्तः पुण्याकांक्षी प्रियंवदः ।
मध्यस्थः सर्वकार्येषु सामान्यः स्यान्न संशयः ।
एतज्ज्ञात्वैव गुरुभिर्दीयते मुक्तितो लयः ॥ १९ ॥

अब मध्यमसाधक लक्षण कहते हैं-सामान्य बुद्धि हो क्षमावान् हो पुण्यकर्म करनेमें इच्छा रखता हो प्रिय बोलता हो सर्वकार्यमें मध्यस्थ रहता हो अर्थात् न हर्ष न विषाद इसको मध्य साधक कहते हैं। यह निश्चय है गुरु इसको विचारके मुक्ति-मार्ग जो लय योग है उसका उपदेश करे ॥ १९ ॥

अधिमात्रसाधकलक्षणम्।

स्थिरबुद्धिर्लये युक्तः स्वाधीनो वीर्यवानपि।
महाशयो दयायुक्तः क्षमावान् सत्यवानपि ॥ २० ॥
शूरो वयस्थः श्रद्धावान् गुरुपादाब्जपूजकः।
योगाभ्यासरतश्चैव ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः ॥ २१ ॥
एतस्य सिद्धिः षडवर्षैर्भवेदभ्यासयोगतः।
एतस्मै दीयते धीरो हठयोगश्च साङ्गतः ॥ २२ ॥

अब अधिमात्रसाधक लक्षण कहते हैं—स्थिर बुद्धि हो लय-योगमें समर्थ हो स्वतन्त्र हो अर्थात् किसीके आधीन हो वीर्यवान् हो महाशय हो दयावान् हो क्षमावान् हो सत्यवान् हो शूर हो समाधियोगमें श्रद्धा हो गुरुपादपद्म पूजक हो योगाभ्यासरत हो ऐसे गुणवाले पुरुषको अधिमात्र कहते हैं। योगाभ्याससे ऐसे पुरुषको छः वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी गुरुको उचित है कि ऐसे धीर पुरुषको अङ्गसहित हठयोगका उपदेश दे ॥

अधिमात्रतमसाधकलक्षणम्।

महावीर्यान्वितोत्साही मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यासशीलश्च निर्मोहश्च निराकुलः ॥२३॥
नवयौवनसम्पन्नो मिताहारी जितेन्द्रियः।
निर्भयश्च शुचिर्दक्षो दाता सर्वजनाश्रयः ॥ २४ ॥
अधिकारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रियंवदः ॥ २५ ॥
शास्त्रविश्वाससम्पन्नो देवतागुरुपूजकः।
जनसङ्गविरक्तश्च महाव्याधिविवर्जितः ॥ २६ ॥

अधिमात्रतरो ज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः ।
त्रिभिस्संवत्सरैः सिद्धिरेतस्य नात्र संशयः ।
सर्वयोगाधिकारी स नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥

महावीर्यवान् उत्साहयुक्त स्वरूपवान् शूरतासम्पन्न शास्त्रज्ञ अभ्यासशील अर्थात् श्रुतिधर मोहसे हीन आकुलतारहित अर्थात् सावधान नवीन यौवनसंपन्न अर्थात् तरुणप्रमाणभोजी जितेन्द्रिय निर्भय पवित्र आचार सर्वकर्ममें निपुण दानशील शरणागतपालक स्थिरचित्त बुद्धिमान् सन्तोषयुक्त क्षमावान् शीलवान् धार्मिक कर्मोंको गोप्य रखनेवाला प्रियसत्यवादी शास्त्रमें विश्वास देवता और गुरुपूजक जनसङ्गरहित महाव्याधिरहित ऐसे गुण जिसमें हों वह अधिमात्रतम है और सर्व योगका साधक है इसको तीन वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहीं है । यह सर्वयोगका अधिकारी है ऐसे पुरुषको गुरु समस्त योगका उपदेश करदें इसमें विचारका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २३-२७
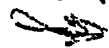
प्रतीकोपासनाकथनम् ।

प्रतीकोपासना कार्या दृष्टादृष्टफलप्रदा ।
पुनाति दर्शनादत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥

अब प्रतीक उपासना कहते हैं—प्रतीक उपासनासे दृष्टादृष्टफललाभ होता है और उसके दर्शनसे मनुष्य पवित्र होता है इसमें संशय नहीं है ॥ २८ ॥

गाढातपे स्वप्रतिबिम्बितेश्वरं निरीक्ष्य विस्फारितलोचनद्वयम् । यदा नभः पश्यति स्वप्रतीकं नभोऽङ्गणे तत्क्षणमेव पश्यति ॥ २९ ॥

गाढ आतपमें अर्थात् गहरे धूपमें स्वईश्वरका प्रतिविम्व नेत्र स्थिर करके देखे जब अपनी छायाका प्रतिविम्ब शून्यमें देख पडे तब ऊपर आकाशमें अपना प्रतिबिम्ब अवश्य देखेगा ॥ २९ ॥

प्रत्यहं पश्यते यो वै स्वप्रतीकं नभोऽङ्गणे ।
आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य न मृत्युः स्यात्कदाचन ॥ ३० ॥

जो नित्य आकाशमें स्वप्रतीक-अर्थात् अपना प्रतिबिम्ब देखेगा उसके आयुकी वृद्धि होगी और उसकी मृत्यु कभी न होगी अर्थात् चिरंजीव हो जायगा ॥ ३० ॥

यदा पश्यति सम्पूर्णं स्वप्रतीकं नभोऽङ्गणे ।
तदा जयं सभायां च युद्धे निर्जित्य सञ्चरेत् ॥ ३१ ॥

जब सम्पूर्ण अपना प्रतिबिम्ब आकाशमें देखे तब सभामें उसकी जय होय और युद्धमें शत्रुको जीत लेगा ॥ ३१ ॥

यः करोति सदाभ्यासं चात्मानं विन्दते परम् ।
पूर्णानन्दैकपुरुषं स्वप्रतीकप्रसादतः ॥ ३२ ॥

जो सर्वदा स्वप्रतीक उपासनाका अभ्यास करे तो उसको आत्माकी प्राप्ति होगी और इसी स्वप्रतीकके प्रसादसे पूर्णानन्दस्वरूप अर्थात् आत्माका दर्शन होगा. तात्पर्य यह है कि जब हृदयाकाशमें अपने स्वरूपका अनुभव होगा तब आत्माकी परमज्योतिका प्रकाश होगा ॥ ३२ ॥

यात्राकाले विवाहे च शुभे कर्मणि सङ्कटे ।
पापक्षये पुण्यवृद्धौ प्रतीकोपासनं चरेत् ॥ ३३ ॥

यात्राकालमें, विवाहके समयमें, शुभकर्ममें और पुण्यवृ-

द्धिके अर्थ स्वप्रतीक अर्थात् अपने प्रतिविम्बका दर्शन करे तो सर्वदा कल्याण होगा ॥ ३३ ॥

निरन्तरकृताभ्यासादन्तरे पश्यति ध्रुवम् ।
तदा मुक्तिमवाप्नोति योगी नियतमानसः ॥ ३४ ॥

सर्वदा प्रतीकोपासनाके अभ्यास करनेसे निश्चय हृदयाकाशमें अपना प्रतिविम्ब भान होगा तब निश्चय आत्मा योगीको मुक्ति प्राप्त होगी ॥ ३४ ॥

अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां द्विलोचने ।
नासारन्ध्रे च मध्याभ्यामनामाभ्यां मुखं दृढम् ॥३५॥
निरुध्य मारुतं योगी यदैव कुरुते भृशम् ।
तदा तत्क्षणमात्मानं ज्योतीरूपं स पश्यति ॥३६॥

दोनों अंगुष्ठसे दोनों कर्ण बन्द करे और दोनों तर्जनीसे दोनों नेत्रोंको बन्द करे और दोनों मध्यमा अंगुलीसे दोनों नासारन्ध्रको बन्द करे और दोनों अनामिका अंगुली और कनिष्ठासे मुखको बन्द करे यदि इस प्रकार योगी वायुको निरोध करके इसका वारम्वार अभ्यास करे तो आत्माज्योतिस्वरूपका हृदयाकाशमें भान होगा ॥ ३५-३६ ॥

तत्तेजो दृश्यते येन क्षणमात्रं निराकुलम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ३७ ॥

आत्माका यह परमतेज जो पुरुष स्थिरचित्त होके क्षणमात्रभी देखेगा वह सर्वपापसे मुक्त होके परमगतिको प्राप्त होगा ३७

निरन्तरकृताभ्यासाद्योगी विगतकल्मषः ।
सर्वदेहादि विस्मृत्य तदभिन्नः स्वयं गतः ॥ ३८ ॥

निरंतर जो योगी शुद्धचित्त होके यह प्रतीकोपासनाका अभ्यास करेगा वह सर्व देहादिकर्मसे रहित होके आत्मासे अभिन्न हो जायगा अर्थात् आत्मस्वरूप हो जायगा ॥ ३८ ॥

यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः ।
स वै ब्रह्मविलीनः स्यात्पापकर्मरतो यदि ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य गुप्ताचारसे इसका सर्वदा अभ्यास करता है सो यदि पापकर्मरतभी हो तथापि उसका मोक्ष होगा ॥ ३९ ॥

गोपनीयः प्रयत्नेन सद्यः प्रत्ययकारकः ।
निर्वाणदायको लोके योगोऽयं मम वल्लभः ।
नादः संजायते तस्य क्रमेणाभ्यासतश्च यः ॥ ४० ॥

जो इसका अभ्यास करेगा उसको क्रमसे नाद उत्पन्न होगा हे देवि ! यह प्रतीकोपासना निर्वाणयोगका दाता है इस हेतुसे हमको अतिप्रिय है यह शीघ्र फलदाता है इसको यत्नसे गोप्य रखना उचित है ॥ ४० ॥

मत्तभृङ्गवेणुवीणासदृशः प्रथमो ध्वनिः ।
एवमभ्यासतः पश्चात् संसारध्वान्तनाशनम् ।
घण्टानादसमः पश्चात् ध्वनिर्मेघरवोपमः ॥ ४१ ॥
ध्वनौ तस्मिन्मनो दत्त्वा यदा तिष्ठति निर्भरः ।
तदा संजायते तस्य लयस्य मम वल्लभे ॥ ४२ ॥

योगाभ्यासद्वारा प्रथम मत्त भ्रमरकी नाईं शब्द वेणु और वाणीके समान शब्द उत्पन्न होगा इसी तहर योगाभ्यास संसार-तमनाशकसे फिर घंटानाद समान शब्द होगा फिर मेघगर्जनाके

समान ध्वनि होगी । हे प्रिये पार्वती ! इस ध्वनिमें यदि मन निश्चल स्थित होजाय तब मोक्षका दाता लय उत्पन्न होगा ४२

तत्र नादे यदा चित्तं रमते योगिनो भृशम् ।
विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादेन सह शाम्यति ॥ ४३ ॥

जब योगिका चित्त उस नादमें निरंतर रमण करेगा तब सकल विषयसे स्मरण रहित होके चित्त समाधिमें लय हो जायगा ॥ ४३

एतदभ्यासयोगेन जित्वा सम्यक् गुणान् बहून् ।
सर्वारम्भपरित्यागी चिदाकाशे विलीयते ॥ ४४ ॥

इसी प्रकार अभ्यास द्वारा सर्व गुणोंको जीतके और सब कार्योंके आरंभको त्यागके योगी आनंदपूर्वक चैतन्यस्वरूप हृदयाकाशमें लय हो जायगा ॥ ४४ ॥

नासनं सिद्धसदृशं न कुम्भसदृशं बलम् ।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः ॥ ४५ ॥

हे देवि ! सिद्धासनके समान कोई और आसन नहीं है और न कुम्भकके समान कोई बल है और न खेचरीके समान कोई मुद्रा है और न नादके समान कोई दूसरा लय है ॥ ४५ ॥

मूलाधारपद्मविवरणम् ।

इदानीं कथयिष्यामि मुक्तस्यानुभवं प्रिये ।
यज्ज्ञात्वा लभते मुक्तिं पापयुक्तोऽपि साधकः ॥ ४६ ॥

हे प्रिये पार्वति ! अब मुक्तिका अनुभव तुमसे कहते हैं जिसके ज्ञानसे पापयुक्त साधकभी मुक्तिलाभ करता है ॥ ४६ ॥

समभ्यर्च्येश्वरं सम्यक् कृत्वा च योगमुत्तमम् ।
गृह्णीयात्सुस्थितो भूत्वा गुरुं सन्तोष्य बुद्धिमान् ४७

योगकांक्षी साधक सम्यक् प्रकारसे ईश्वरकी पूजा करके स्वस्थचित्तसे योगासनपर बैठके बुद्धिमान् गुरुको सर्व प्रकारसे प्रसन्न करके यह उत्तम योग ग्रहण करे ॥ ४७ ॥

जीवादि सकलं वस्तु दत्त्वा योगविदं गुरुम् ।
सन्तोष्यातिप्रयत्नेन योगोऽयं गृह्यते बुधैः ॥ ४८ ॥

बुद्धिमान् साधक जीवादिक सकल पदार्थ योगवित् गुरुको अर्पण करके उनके प्रसन्नतापूर्वक यत्न करके यह योग ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥

विप्रान् सन्तोष्य मेधावी नानामङ्गलसंयुतः ।
ममालये शुचिर्भूत्वा गृह्णीयाच्छुभमात्मनः ॥ ४९ ॥

योगग्रहणके समय बुद्धिमान् साधक ब्राह्मणको सन्तोष करके अर्थात् द्रव्यादिक प्रदानपूर्वक प्रसन्न करके अनेक आशीर्वाद श्रवण करके पवित्रतासे शिवमंदिरमें बैठके आत्माके अर्थ जो यह शुभयोग है इसको ग्रहण करे ॥ ४९ ॥

संन्यस्यानेन विधिना प्राक्तनं विग्रहादिकम् ।
भूत्वा दिव्यवपुर्योगी गृह्णीयाद्वक्ष्यमाणकम् ॥ ५० ॥

साधक इस विधानसे पूर्व शरीर गुरुकी कृपासे त्यागके दिव्य शरीर होके जो आगे कहेंगे वह योग ग्रहण करे। तात्पर्य यह है कि योगग्रहणके समयसे साधकका शरीर दिव्य हो जाता है व्याधि और अज्ञानका शरीर नहीं रह जाता इस हेतुसे योगग्रहणके समय साधक यह चिंतन करे कि पूर्वशरीरको हमने त्यागके दिव्यशरीर धारण किया ॥ ५० ॥

पद्मासनस्थितो योगी जनसङ्गविवर्जितः ।
विज्ञाननाडीद्वितयमङ्गुलीभ्यां निरोधयेत् ॥ ५१ ॥

योगी संगरहित पद्मासनमें स्थित होके दोनों विज्ञाननाडी अर्थात् इडा और पिंगलाको दो अंगुलीसे निरोध करे ॥५१॥

सिद्धेस्तदाविर्भवति सुखरूपी निरञ्जनः ।
तस्मिन् परिश्रमः कार्यो येन सिद्धो भवेत् खलु॥५२

यह योग सिद्ध होनेसे साधकके हृदयमें सुखरूपी निरंजन परब्रह्म चैतन्यस्वरूपका प्रकाश होगा इस हेतुसे यह योगमें साधकको परिश्रम कर्तव्य है इससे निश्चय यह योग सिद्ध हो जायगा ॥ ५२ ॥

यः करोति सदाभ्यासं तस्य सिद्धिर्न दूरतः ।
वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य क्रमादेव न संशयः ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य इस योगका सर्वदा अभ्यास करेगा उसको सर्व-सिद्धि प्राप्त होगी और निश्चय आपही क्रमसे वायु सिद्ध हो जायगा ॥ ५३ ॥

सकृद्यः कुरुते योगी पापौघं नाशयेद्ध्रुवम् ।
तस्य स्यान्मध्यमे वायोः प्रवेशो नात्र संशयः ॥५४॥

जो योगी प्रतिदिन एक वार यह अभ्यास करे तो उसके सर्व पापोंका नाश हो जायगा और उसका प्राणवायु निश्चय सुषुम्णामें प्रवेश करेगा ॥ ५४ ॥

एतदभ्यासशीलो यः स योगी देवपूजितः ।
अणिमादिगुणान् लब्ध्वा विचरेद्भुवनत्रये ॥ ५५ ॥

यह अभ्यासशील योगी देवतोंसे पूजित है और अणिमादिक सिद्धि लाभ करके तीनों लोकमें इच्छापूर्वक विचरेगा ५५

यो यथास्यानिलाभ्यासात्तद्भवेत्तस्य विग्रहः।
तिष्ठदात्मनि मेधावी संयुतः क्रीडते भृशम् ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार वायुका अभ्यास करेगा उसी तरह साधकका शरीर सिद्ध हो जायगा और बुद्धिमान् पुरुष आत्मामें स्थित होके सर्वदा क्रीडा करेगा ॥ ५६ ॥

एतद्योगं परं गोप्यं न देयं यस्य कस्यचित्।
सप्रमाणैः समायुक्तस्तमेव कथ्यते ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

यह योग परमगोपनीय है अनधिकारीको कदापि देनेके योग्य नहीं है परन्तु प्रमाणयुक्त अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणयुक्त साधकको अवश्य देना उचित है ॥ ५७ ॥

योगी पद्मासने तिष्ठेत् कण्ठकूपे यदा स्मरन्।
जिह्वां कृत्वा तालुमूले क्षुत्पिपासा निवर्त्तते ॥ ५८॥

पद्मासनस्थित योगी जब कण्ठकूपका स्मरण अर्थात् उस स्थानमें मनको लय करके जिह्वाको तालुमूलमें स्थित करेगा तब क्षुधा और पिपासासे रहित हो जायगा ॥ ५८ ॥

कण्ठकूपादधःस्थाने कूर्मनाड्यस्ति शोभना।
तस्मिन् योगी मनो दत्त्वा चित्तस्थैर्यं लभेद्भृशम्॥५

कण्ठकूपके नीचे कूर्मनाडी शोभित है उस नाडीमें योगी मनको स्थिर करके अत्यंत चित्तकी स्थिरता पावेगा ॥ ५९ ॥

शिरः कपाले रुद्राक्षं विवरं चिन्तयेद्यदा ।
तदा ज्योतिःप्रकाशः स्याद्विद्युत्पुञ्जसमप्रभः ॥ ६० ॥
एतच्चिन्तनमात्रेण पापानां संक्षयो भवेत् ।
दुराचारोऽपि पुरुषो लभते परमं पदम् ॥ ६१ ॥

शिर और कपालमें जो रुद्राक्ष विवर है उसमें यदि चिन्तना करे तो विद्युत्पुञ्जके समान आत्मज्योतिका प्रकाश होगा और इसके चिन्तनमात्रसे योगीका सर्व पाप नष्ट हो जायगा यदि दुराचारमेंभी जो पुरुष आसक्त है वहभी परम गतिको प्राप्त होगा ६१

अहर्निशं यदा चिन्तां तत्करोति विचक्षणः ।
सिद्धानां दर्शनं तस्य भाषणं च भवेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

जो बुद्धिमान् साधक रात्रि दिवस यह चिन्तन करते हैं उनको सिद्ध लोगोंका अवश्य दर्शन और उनसे भाषण होताहै ६२

तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् भुञ्जन् ध्यायेच्छून्यमहर्निशम् ।
तदाकाशमयो योगी चिदाकाशे विलीयते ॥ ६३ ॥

जो पुरुष चलते बैठते सोते भजन करते रात्रि दिवस यह ध्यान करते हैं सो आकाशस्वरूप योगी चिदाकाश अर्थात् परमात्मामें लय हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

एतज्ज्ञानं सदा कार्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ।
निरन्तरकृताभ्यासान्मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ।
एतज्ज्ञानबलाद्योगी सर्वेषां वल्लभो भवेत् ॥ ६४ ॥

सिद्धिकांक्षी योगीको इस ध्यानका सर्वदा अभ्यास करना उचित है सर्वदा अभ्यास करनेसे हे पार्वति ! हमारे तुल्य हे

जायगा निश्चय इस ज्ञानबलसे योगी सबको अर्थात् त्रैलोक्यको प्रिय हो जाता है ॥ ६४ ॥

सर्वान् भूतान् जयं कृत्वा निराशीरपरिग्रहः।
नासाग्रे दृश्य येन पद्मासनगतेन वै।
मनसो मरणं तस्य खेचरत्वं प्रसिद्ध्यति ॥ ६५ ॥

योगी सर्व भूतोंको जय करके और क्षुधा और इच्छाको जीतके पद्मासनसे स्थित होके जो नासाग्रमें देखता है उसका मन स्थिर हो जाता है तब खेचरत्व सिद्ध होता है ॥ ६५ ॥

ज्योतिः पश्यति योगीन्द्रः शुद्धं शुद्धाचलोपमम्।
तत्राभ्यासबलेनैव स्वयं तद्रक्षको भवेत् ॥ ६६ ॥

शुद्ध अचलके समान परमज्योति योगी देखता है तब अभ्यासबलसे आपही उसका रक्षक होता है अर्थात् ज्योति देखनेके अभ्यासकी रक्षा करता है ॥ ६६ ॥

उत्तानशयने भूमौ सुप्त्वा ध्यायन्निरन्तरम्।
सद्यः श्रमविनाशाय स्वयं योगी विचक्षणः ॥ ६७ ॥
शिरः पश्चात्तु भागस्य ध्याने मृत्युञ्जयो भवेत्।
भ्रूमध्ये दृष्टिमात्रेण ह्यपरः परिकीर्तितः ॥ ६८ ॥

बुद्धिमान् योगी भूमिमें उत्तानशयन करके निरन्तर ध्यान करे तो तात्काल आपही श्रमका नाश होजायगा शिरके पृष्ठ-भागका ध्यान करनेसे योगी मृत्युका जीतनेवाला होजायगा भ्रूके मध्यमें जो दृष्टिमात्रसे फल होता है सो हे देवि! हम पहले कह चुके हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

चतुर्विधस्य चान्नस्य रसस्त्रेधा विभज्यते ।
तत्र सारतमो लिंगदेहस्य परिपोषकः ॥ ६९ ॥
सप्तधातुमयं पिण्डमेति पुष्णाति मध्यगः ।
याति विण्मूत्ररूपेण तृतीयः सप्ततो बहिः ॥ ७० ॥
आद्यभागं द्वयं नाड्यः प्रोक्तास्ताः सकला अपि ।
पोषयन्ति वपुर्वायुमापादतलमस्तकम् ॥ ७१ ॥
नाडीभिराभिः सर्वाभिर्वायुः सञ्चरते यदा ।
तदैवान्नरसो देहे साम्येनेह प्रवर्तते ॥ ७२ ॥

चार प्रकार अन्न भोजन करनेसे तीन प्रकारका रस उत्पन्न होता-है उसमें जो प्रथम सारभूत रस है वह लिंगशरीरको पोषण करता है। दूसरा रस है वह सप्तधातुमय पिण्डको पोषण करता है, तीसरा रस सप्त धातुके बाहर मल मूत्र रूप है पहिले जो दो भाग रस कहा है वही सकल नाडीरूप है और पादसे लेकर मस्तकपर्यंत शरीरके वायुका पोषण करते हैं जब सब नाडीके साथ वायु चलता है तब अन्नका रस शरीरमें समभावसे प्रवृत्त होता है ॥ ६९–७२ ॥

चतुर्दशानां तत्रेह व्यापारे मुख्यभागतः ।
ता अनुग्रत्वहीनाश्च प्राणसञ्चारनाडिकाः ॥ ७३ ॥

सर्व नाडियोंमें पूर्वोक्त चौदह नाडियां शरीरके मुख्य व्यापारको करती हैं यह प्राण सञ्चार करनेवाली चौदह नाडीमें परस्पर कोई किसीसे न्यून अधिक नहीं हैं ॥ ७३ ॥

गुदाद्द्व्यङ्गुलतश्चोर्ध्वं मेढ्रैकाङ्गुलतस्त्वधः ।
एवं चास्ति समं कन्दं समता चतुरङ्गुलम् ॥ ७४ ॥

गुदासे दो अङ्गुल ऊपर और मेढ्र अर्थात् लिङ्गमूलसे एक अंगुल नीचे चार अङ्गुल विस्तार कन्दका प्रमाण ॥ ७४ ॥

पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा॥७५॥
संवेष्ट्य सकला नाडीः सार्द्धत्रिकुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णाविवरे स्थिता॥७६॥

गुदा और मेढ्रके मध्यमें जो योनि है वह पश्चिमाभिमुखी अर्थात् पीछेको मुख है उसी स्थानमें कन्द है और उसी स्थनमें सर्वदा कुण्डलिनीकी स्थिति है यह कुण्डलिनी सकल नाडीको घेरके साढे तीन फेरा कुटिल आकृतिसे अपने मुखमें पुच्छको लेके सुषुम्णाविवरमें स्थित है॥ ७५॥७६॥

सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
अहिवत् सन्धिसंस्थाना वाग्देवी बीजसंज्ञिका॥७७॥

यह कुण्डलिनी सर्पके समान निद्रिता अपने प्रभासे प्रकाशमान है ओर सर्पके सदृश संधिमें स्थित है और वाग्देवी है अर्थात् कुण्डलिनीहीसे वाक्य उच्चारण होता है और बीजसंज्ञक है अर्थात् संसारकी बीज है॥ ७७॥

ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्मला स्वर्णभास्वरा।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्रसूतिका॥ ७८॥

यह कुण्डलिनीदेवी ईश्वरकी शक्तिमें तप्तस्वर्णके समान निर्मल तेज प्रभा है और सत्व रज तम यह तीनों गुणकी माताहै ॥७८

तत्र बन्धूकपुष्पाभं कामबीजं प्रकीर्तितम् ।
कलहेमसमं योगे प्रयुक्ताक्षररूपिणम् ॥ ७९ ॥

जिस स्थानमें कुण्डलिनी है उसी स्थानमें बन्धूकपुष्पके समान रक्तवर्ण कामबीजकी स्थिति कही गई है वह कामबीज तप्तस्वर्णके समान स्वरूप योग युक्त द्वारा चिंतनीय है ॥७९॥

सुषुम्णापि च संश्लिष्टो बीजं तत्र वरं स्थितम् ।
शरच्चंद्रनिभं तेजस्स्वयमेतत्स्फुरत्स्थितम् ॥ ८० ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
एतत्त्रयं मिलित्वैव देवी त्रिपुरभैरवी ।
बीजसंज्ञं परं तेजस्तदेव परिकीर्तितम् ॥ ८१ ॥

जिस स्थानमें कुण्डलिनी स्थित है सुषुम्णा उसी स्थानमें कामबीजके साथ स्थित है और वह बीज शरच्चन्द्रके समान प्रकाशमान तेज है और वह आपही कोटि सूर्यके समान प्रकाश और कोटि चंद्रके समान शीतल है यह तीनों मिलके अर्थात् कुण्डलिनी सुषुम्णा बीजकुण्डलिनीका नाम त्रिपुरभैरवी देवी है यह कुण्डलिनी परम तेजमान है और उसकी बीजसंज्ञा है॥८१

क्रियाविज्ञानशक्तिभ्यां युतं यत्परितो भ्रमत् ।
उत्तिष्ठद्विशतस्त्वम्भः सूक्ष्मं शोणशिखायुतम् ।
योनिस्थं तत्परं तेजः स्वयम्भूलिंगसंज्ञितम् ॥ ८२॥

वह बीज क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिसे युक्त होके शरीरमें भ्रमण करता है और कभी ऊर्ध्वगामी होता है और कभी जलमें प्रवेश करता है और सूक्ष्म प्रज्वलित अग्निके समान शिखायुत परमतेज वीर्यकी स्थिति योनिस्थानमें है स्वयम्भू लिंगसंज्ञा है ८२

आधारपद्ममेतद्धि योनिर्यस्यास्ति कन्दतः।
परिस्फुरत् वादिसान्तचतुर्वर्णं चतुर्दलम्॥ ८३॥

यह जो कहा है इसको आधार पद्म कहते हैं और इस पद्मके मूलमें योनिकी स्थिति है यह पद्म परम प्रकाशमान वसे सतक अर्थात् व, श, ष, स, चार वर्ण और चार दल करके शोभित है॥

कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसंगतम्।
द्विरण्डो यत्र सिद्धोऽस्ति डाकिनी यत्र देवता॥८४
तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता।
तस्या ऊर्ध्वे स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम्॥८५॥
यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षणः।
तस्य स्याद्दार्दुरी सिद्धिर्भूमित्यागक्रमेण वै॥ ८६॥

वह कमल कुलाभिध है अर्थात् कुलनाम है और स्वर्णके समान कांति है और स्वयंभूलिंगसे युक्त है और उस पद्ममें द्विरण्डनामक सिद्ध और डाकिनी देवता अधिष्ठात्री हैं और गणेश देवता है और उस पद्मके मध्यमें योनि है उस योनिमें कुण्डलिनीकी स्थिति है और उस कुण्डलिनीके ऊपर दीप्तिमान् तेजस्वरूप कामबीज भ्रमण करता है जो बुद्धिमान् पुरुष इस मूलाधारपद्मका सर्वदा ध्यान करते हैं उनको दार्दुरी वृत्ति सिद्ध होती है और क्रमसे भूमिको त्यागके आकाशगमन करते हैं ८४-८६

वपुषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम्।
आरोग्यं च पटुत्वं च सर्वज्ञत्वं च जायते॥ ८७॥

यह ध्यान करनेसे शरीरमें उत्तम कान्ति होती है और

जठराग्नि वर्धित होता है और शरीर आरोग्य रहता है और पटुता और सर्वज्ञता अर्थात् सर्ववस्तुका ज्ञान उत्पन्न होताहै ८७

भूतं भव्यं भविष्यच्च वेत्ति सर्वं सकारणम् ।
अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं वदेद् ध्रुवम् ॥ ८८ ॥

फिर भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल और सर्व वस्तुके कारणका ज्ञान होता है और जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं किया है उसको रहस्यसहित व्याख्या करनेकी शक्ति निश्चय उत्पन्न होती है ॥ ८८ ॥

वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः ॥ ८९ ॥

योगीके मुखमें सर्वदा निरंतर सरस्वति देवी नृत्य करती है और योगीकी जपमात्रसे मन्त्रादिकी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ८९ ॥

जरामरणदुःखौघान्नाशयति गुरोर्वचः ।
इदं ध्यानं सदा कार्यं पवनाभ्यासिना परम् ।
ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥९०

गुरुका वचन जरा मृत्यु आदि जो दुःखका समूह है उसको नाश कर देता है पवनाभ्यासी साधकको यह परमध्यान सर्वदा करनेके योग्य है ध्यानमात्रसे योगीन्द्र सर्वपापसे मुक्त हो जाता है ॥ ९० ॥

मूलपद्मं यदा ध्यायेत् योगी स्वयम्भुलिङ्गकम् ।
तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

योगी जब मूलाधार पद्म स्वयम्भूलिङ्गसंयुक्तका ध्यान करे तो उसी क्षण निश्चय पापके समूहका नाश कर देगा॥ ९१ ॥

यं यं कामयते चित्ते तं तं फलमवाप्नुयात् ।
निरन्तरकृताभ्यासात्तं पश्यति विमुक्तिदम् ॥ ९२ ॥
बहिरभ्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयं प्रयत्नतः ।
ततः श्रेष्ठतमं ह्येतन्नान्यदस्ति मतं मम ॥ ९३ ॥

जो साधक मूलाधार पद्मका ध्यान करते हैं वह अपने चित्तमें जो जो वस्तुकी इच्छा करते हैं सो सो सर्व वस्तु उनको प्राप्त होती हैं और सर्वदा यत्नपूर्वक यह अभ्यास करनेसे बाहर भीतर श्रेष्ठ पूजनीय मुक्तिदायी परमात्माको देखते हैं। हे पार्वती! इससे श्रेष्ठतम दूसरा योग नहीं है यह हमारा मत है ॥९२-९३

आत्मसंस्थं शिवं त्यक्त्वा बहिःस्थं यः समर्चयेत् ।
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया ॥९४॥

मनुष्य शरीरस्थ शिवको त्यागके बाहरके देवताको पूजते हैं जैसे हाथके पिंडको त्यागके जीवके अन्य पिंडके हेतु लोग भ्रमण करते हैं॥ ९४ ॥

आत्मलिंगार्चनं कुर्यादनालस्यं दिने दिने ।
तस्य स्यात्सकला सिद्धिर्नात्र कार्या विचरणा॥९५॥
निरन्तरकृताभ्यासात्षण्मासे सिद्धिमाप्नुयात् ।
तस्य वायुप्रवेशोऽपि सुषुम्णायां भवेद्ध्रुवम् ॥ ९६ ॥
मनोजयं च लभते वायुबिन्दुविधारणाम् ।
ऐहिकामुष्मिकी सिद्धिर्भवेन्नैवात्र संशयः ॥ ९७ ॥

जो आलस्यको त्यागके शरीरस्थ परमात्माका नित्य पूजन करेगा उसको सकलसिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहीं है यदि इसका अभ्यास निरन्तर करे तो छः मासमें सिद्धि प्राप्त होगी और उसके सुषुम्णानाडीमें निश्चय वायु प्रवेश करेगा और मनको जीत लेगा और वायु और बिन्दुका धारण सिद्ध होगा और इस लोक और परलोककी सिद्धि प्राप्तहोगी इसमें संशय नहीं है ९७

स्वाधिष्ठानचक्रविवरणम् ।

द्वितीयन्तु सरोजं च लिङ्गमूले व्यवास्थितम् ।
बादि लान्तं च षड्वर्णं परिभास्वरषड्दलम् ॥ ९८ ॥
स्वाधिष्ठानाभिधं तत्तु पंकजं शोणरूपकम् ।
बाणाख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी ९९

दूसरा पद्म जो लिङ्गमूलमें स्थित है वह बसे लतक अर्थात् ब-भ-म-य-र-ल यह छः वर्णोंकरके युक्त है और छःदलसे शोभित है यह रक्तवर्ण पद्मका नाम स्वाधिष्ठान है और इस स्थानमें बाणनामक सिद्ध और राकिणी देवी अधिष्ठात्री हैं और ब्रह्मा देवता है ॥ ९८-९९ ॥

यो ध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम् ।
तस्य कामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः १००

जो पुरुष यह दिव्य स्वाधिष्ठानपद्मका सर्वदा ध्यान करते हैं उनको कामरूपिणी स्त्री कामसे मोहित होके भजती हैं अर्थात् सेवा करती हैं ॥ १०० ॥

विविधं चाश्रुतं शास्त्रं निःशंको वै वदेद् ध्रुवम् ।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः ॥ १०१ ॥

विविधशास्त्र जो कभी श्रवण नहीं किया हो उसकोभी इस पद्मके ध्यानके प्रभावसे निःशंक कहेगा और सर्वरोगसे मुक्त होके आनन्दपूर्वक संसारमें विचरेगा ॥ १०१ ॥

मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते ।
तस्य स्यात्परमा सिद्धिरणिमादिगुणप्रदा ॥ १०२ ॥
वायुः सञ्चरते देहे रसवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
आकाशपङ्कजगलत्पीयूषमपि वर्द्धते ॥ १०३ ॥

यह साधक मृत्युको नाश कर देता है और वह किसीसे नष्ट नहीं होता और उस साधकको गुण देनेवाली अणिमादि सिद्धि प्राप्त होती हैं और उसके शरीरमें वायु संचार करता है। अर्थात् सुषुम्णामें प्रवेश करता है और निश्चय रसकी वृद्धि होती है और सहस्रदलकमलसे जो अमृत स्रवता है उसकी वृद्धि होती है॥

मणिपूरचक्रविवरणम् ।

तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम् ।
दशारण्डादिफान्तार्णं शोभितं हेमवर्णकम् ॥१०४॥
रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायकः ।
तत्रस्था लाकिनी नाम्नी देवी परमधार्मिका ॥ १०५

मणिपूरनामक तीसरा पद्म जो नाभिस्थलमें है वह हेमवर्ण दशदलकरके शोभित है और ड-से-फ-तक अर्थात्-ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-प-फ दशवर्णसे युक्त है और उस स्थानमें सर्वमंगलदाता रुद्रनामक सिद्ध और लाकिनी देवी अधिष्ठात्री और विष्णुदेवता हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके ।
तस्य पातालसिद्धिः स्यान्निरन्तरसुखावहा ॥ १०६ ॥
ईप्सितं च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् ।
कालस्य वञ्चनं चापि परदेहप्रवेशनम् ॥ १०७ ॥

जो साधक इस मणिपूरचक्रको सर्वदा ध्यान करते हैं सो सर्वसिद्धिदात्री जो पातालसिद्धि है उसको लाभ करते हैं और उनका दुःख रोगविनाश होके सकल मनोरथ सिद्ध होता है और कालको निरादर करदेते हैं और परदेहमें प्रवेश करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

जाम्बूनदादिकरणं सिद्धानां दर्शनं भवेत् ।
औषधीदर्शनं चापि निधीनां दर्शनं भवेत् ॥ १०८॥

यह साधकको स्वर्णआदि रचना करनेकी शक्ति होती हैं और देवतोंका दर्शन, निधि तथा औषधीका दर्शन होता है १०८

अनाहतचक्रविवरणम् ।

हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पङ्कजं भवेत् ।
कादिठान्तार्णसंस्थानं द्वादशारसमन्वितम् ।
अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम् ॥ १०९ ॥

हृदयस्थानमें जो अनाहतनामक चतुर्थ पद्म है वह क से ठ तक अर्थात् क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ ये बारह वर्ण और बारह दलसे युक्त हैं, अति उज्ज्वल रक्तवर्णसे शोभा यमान हैं, वह प्रसन्नस्थान वायुका बीज अर्थात् प्राणवायुका आधार है॥

पद्मस्थं तत्परं तेजो बाणलिङ्गं प्रकीर्तितम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं लभेत् ॥ ११० ॥

उस हृदयकमलमें जो परमतेज है उसीको बाणालिङ्ग कहते हैं जिसके ध्यानमात्रसे साधक इस लोक और परलोकका उत्तम फल आनंदपूर्वक लाभ करते हैं ॥ ११० ॥

सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता।
एतस्मिन् सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः।
क्षुभ्यन्ते तस्य कान्ता वै कामार्ता दिव्ययोषितः १११

जिस पद्ममें पिनाकी सिद्ध और काकिनी देवी अधिष्ठात्री हैं उस हृदयस्थपद्ममें जो साधक सर्वदा ध्यान करता है उसके समीप कामार्ता सुन्दर स्त्री अप्सरा आदि मोहित हो जातीहै १११

ज्ञानं चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयं भवेत्।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया खगतां व्रजेत् ॥ ११२ ॥

उस साधकको अपूर्व ज्ञान उत्पन्न होता है, त्रिकालदर्शी होता है, दूरशब्दश्रवण करने दूरकी सूक्ष्मवस्तु देखनेकी शक्ति उत्पन्न होती है, स्वेच्छासे आकाशमें गमन करता है ॥ ११२ ॥

सिद्धानां दर्शनं चापि योगिनीदर्शनं तथा।
भवेत् खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जयं तथा ॥ ११३ ॥
यो ध्यायति परं नित्यं बाणालिङ्गं द्वितीयकम्।
खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः ॥ ११४ ॥
एतद्ध्यानस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते।
ब्रह्माद्याः सकला देवा गोपायन्ति परन्त्विदम् ११५

जो साधक यह दूसरे परमबाणालिंगका नित्य ध्यान करता है उसको देवता और योगिनीका दर्शन होता है, आकाशमें गमन

करनेकी शक्ति हो जाती है, आकाशगामीसे जय प्राप्त होती है, खेचरी भूचरी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं । हे देवि ! इस अनाहतपद्मके ध्यानके माहात्म्यको कोई नहीं कह सकता । इस ध्यानको ब्रह्मादि सकलदेवता गोप्य रखते हैं ॥ ११३–११५॥

विशुद्धचक्रविवरणम् ।

कण्ठस्थानास्थितं पद्मं विशुद्धं नाम पञ्चमम् ।
सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वरसंयुतम् ।
छगलाण्डोऽस्ति सिद्धोऽत्र शाकिनी चाधिदेवता ११६

कंठस्थानमें जो पांचवां विशुद्धनामक कमल है वह स्वर्णके समान कांतिसे शोभित है और सोलह स्वर अर्थात् अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-अं-अःसे युक्त है और छगलांड सिद्ध और शाकिनी देवी अधिष्ठात्री और जीवात्मा देवता इस स्थानमें सदा विराजमान है ॥ ११६ ॥

ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वरपण्डितः ।
किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र विशुद्धाख्ये सरोरुहे ॥
चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव ॥ ११७ ॥

जो पुरुष इस विशुद्धपद्मका नित्य ध्यान करते हैं सो योगीश्वर पंडित हैं और इस विशुद्धपद्ममें उस पुरुषको चारों वेद रहस्यसहित समुद्रके रत्नवत् प्रकाश होता है ॥ ११७ ॥

इह स्थाने स्थितो योगी यदा क्रोधवशो भवेत् ।
तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्पते नात्र संशयः ॥११८॥

यह विशुद्धपद्ममें जब योगी मन और प्राणको स्थित करके

यदि क्रोध करे तो अवश्य चराचर त्रैलोक्य कम्पायमान होजाय इसमें सन्देह नहीं ॥ ११८ ॥

इह स्थाने मनो यस्य दैवात् याति लयं यदा।
तदा बाह्यं परित्यज्य स्वान्तरे रमते ध्रुवम् ॥११९॥
तस्य न क्षतिमायाति स्वशरीरस्य शक्तितः।
संवत्सरसहस्रेऽपि वज्रातिकठिनस्य वै ॥ १२० ॥
यदा त्यजति तद्ध्यानं योगीन्द्रोऽवनिमण्डले।
तदा वर्षसहस्राणि मन्यते तत्क्षणं कृती ॥ १२१ ॥

इस कमलमें साधकका मन दैवात् जब लय होता है तब सकल बाह्यविषयको त्यागके योगीका मन और प्राण शरीरके अंतरहीमें निश्चय रमण करता है उस योगीका शरीर वज्रसेभी कठोर हो जाता है और उसको स्वशरीरकी शक्तिसे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती है, सहस्रवर्ष समाधिके पीछे जब उस ध्यानको छोडके योगीकी चित्तवृत्ति संसारमें आवेगी तब उस सहस्रवर्षको योगी एकक्षण व्यतीत भया मानेगा ॥ ११९-२१॥

आज्ञाचक्रविवरणम्।

आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्।
शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी १२२॥

भ्रूके मध्यमें जो आज्ञापद्म है उसमें हं क्षं दो बीज हैं, सुंदर श्वेतवर्ण दो पत्र हैं, उस स्थानमें महाकाल सिद्ध है और हाकिनी देवी अधिष्ठात्री और परमात्मा देवता है ॥ १२२ ॥

शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृम्भितम्।
पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति ॥ १२३ ॥

तत्र देवः परन्तेजः सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिणः।
चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशयः॥१२४॥

उस आज्ञापद्मके मध्यमें शरच्चंद्रके समान परमतेज चंद्रबीज अर्थात् ठं बीज विराजमान है इसके ज्ञान होनेसे परमहंस पुरुषको कभी कष्ट नहीं होता। यह परमतेजका प्रकाश सर्वतंत्रों-करके गोपित है इसके चिंतनमात्रसे अवश्य परम सिद्धिलाभ होती है॥ १२३॥ १२४॥

तुरीयं त्रितयं लिङ्गं तदाहं मुक्तिदायकः।
ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम्॥१२५

हे पार्वति! उस स्थानमें तुरीया तृतीयलिंग हमही मुक्तिके दाताहैं इसके ध्यानमात्रसे योगन्द्रि निश्चय हमारे तुल्य होजायगा।

इडा हि पिङ्गला ख्याता वरणासीति होच्यते।
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्र भाषितः॥१२६॥

यह शरीरमें जो दो इडा और पिंगला नाडी हैं उनको वरणा और असी कहते हैं यह वरणा और असीके मध्यमें स्वयं विश्व-माथजी विराजमान हैं। तात्पर्य है कि यह इडा और पिंगलाके मध्यमें जो स्थान है उसीको शिवजीने वाराणशी कहा है १२६

एतत् क्षेत्रस्य माहाम्यमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्त्वं सुभाषितम्॥१२७॥

यह वाराणसी क्षेत्रके मांहात्म्यको तत्त्वदर्शी ऋषिलोगोंने अनेक शास्त्रोंमें बहुत प्रकारसे परमतत्त्व कहा है॥ १२७॥

सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरन्ध्रं यतोऽस्ति वै।

ततश्चैषा परावृत्त्या तदाज्ञापद्मदक्षिणे ।
वामनासापुटं याति गङ्गेति परिगीयते ॥ १२८ ॥

सुषुम्णानाडी मेरुदंडद्वारा जहां ब्रह्मरन्ध्र है उस स्थानमें गई है और इडानाडी सुषुम्णाके अपर आवृतसे आज्ञाचक्रके दक्षिणभाग होके वामनासापुटको गई है इसको गङ्गा कहते हैं॥ १२८

ब्रह्मरन्ध्रे हि यत् पद्मं सहस्रारं व्यवस्थितम् ।
तत्र कन्दे हि या योनिस्तस्यां चन्द्रो व्यवस्थितः२९
त्रिकोणाकारतस्तस्याः सुधा क्षरति सन्ततम् ।
इडायाममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः ॥ १३० ॥
अमृतं वहति द्वारा धारारूपं निरन्तरम् ।
वामनासापुटं याति गङ्गेत्युक्ता हि योगिभिः॥१३१॥

ब्रह्मरन्ध्रमें जो सहस्रदल पद्म है उस पद्मके कन्दमें योनि है उस योनिम चन्द्रमा विराजमान हैं और वही त्रिकोणाकार योनिसे चन्द्र विगलित अमृत सर्वदा स्रवता है सा अमृत चंद्रमासे इडानाडीद्वारा समभावसे निरन्तर धारारूप गमन करता है और उस इडानाडीकी गति वामनासापुटमें है इसहेतुसे योगी लोग इस नाडीको गंगा कहते हैं ॥ १२९-१३१ ॥

आज्ञापङ्कजदक्षांसाद्वामनासापुटं गता ।
उदग्वहेति तत्रेडा गङ्गेति समुदाहृता ॥ १३२ ॥

वह इडानाडी आज्ञापद्मके दक्षिण भागसे वामनासापुटको गमन करती है इसीको उदग्वाहिनी गंगा कहते हैं ॥ १३२ ॥

ततो द्वयमिह स्थाने वाराणस्यान्तु चिन्तयेत् ।

तदाकारा पिङ्गलापि तदाज्ञाकमलोत्तरे ।
दक्षनासापुटे याति प्रोक्तास्माभिरसीति वै ॥ १२३॥

यह इडा और पिङ्गलाके मध्य स्थानको वाराणसी चिन्तना करे और इडानाडीके समान पिङ्गलाभी उस आज्ञाकमलके वामभागसे दक्ष नासापुटको गई है गई है इसहेतुसे हे देवि ! इस पिङ्गलाको हमने असी कहा है ॥ १२३ ॥

मूलाधारे हि यत् पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितम् ।
तत्र कन्देऽस्ति या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः ॥

जो मूलाधारपद्म चारदलसे युक्त है उस कमलके कन्दमें जो योनि है इस योनिमें सूर्य स्थित हैं ॥ १२४ ॥

तत् सूर्यमण्डलाद्वारं विषं क्षरति सन्ततम् ।
पिंगलायां विषं तत्र समर्थयति तापनः ॥ १२५ ॥
विषं तत्र वहन्ती या धारारूपं निरन्तरम् ।
दक्षनासापुटे याति कल्पितेयन्तु पूर्ववत् ॥ १२६ ॥

वही सूर्यमण्डलसे निरन्तर विष स्रवता है पिङ्गलाद्वारा गमन करताहै वह विष सर्वदा धारारूप पिङ्गलानाडीसे प्रवाहित रहता है । यह पिंगलानाडी दक्षिणनासापुटमें गई है ॥१२६॥

आज्ञापङ्कजवामा स्याद्दक्षनासापुटं गता ।
उदग्वहा पिङ्गलापि पुरासीति प्रकीर्तिता ॥ १२७॥

यह नाडी आज्ञाकमलके वामभागसे दक्षिणनासिकापुटको गई है इसहेतुसे यह पिंगलानाडीको असी कहते हैं ॥ १२७॥

आज्ञापद्ममिदं प्रोक्तं यत्र देवो महेश्वरः।
पीठत्रयं ततश्चोर्ध्वं निरुक्तं योगचिन्तकैः॥
तद्बिन्दुनादशक्त्याख्यं भालपद्मे व्यवस्थितम्॥१३८

इस स्थानमें महेश्वर देवता है इसको आज्ञापद्म कहते हैं और योगचिन्तक लोग कहते हैं कि इस पद्मके ऊपर पीठत्रयकी स्थिति है अर्थात् नाद बिन्दु शक्ति यह तीनों इस भाल पद्ममें विराजमान हैं॥ १३८॥

यः करोति सदा ध्यानमाज्ञपद्मस्य गोपितम्।
पूर्वजन्मकृतं कर्म विनश्येदविरोधतः॥ १३९॥
इह स्थितः सदा योगी ध्यानं कुर्यान्निरन्तरम्।
तदा करोति प्रतिमां प्रतिजापमनर्थवत्॥ १४०॥
यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोगणकिन्नराः।
सेवन्ते चरणौ तस्य सर्वे तस्य वशानुगाः॥ १४१॥

जो पुरुष सर्वदा गोपित करके इस आज्ञाकमलका ध्यान करते हैं उनका पूर्वजन्मकृतकर्मफल सकल निर्विघ्न नाश हो जाता है। जब योगी यह ध्यान सर्वदा निरन्तर करे तो उसकी प्रतिमा पूजन करना वा जप करना सर्वथा अनर्थवत् है। यक्ष और राक्षस गन्धर्व और अप्सरा किन्नर आदि सब इस ध्यानयुक्त योगीके वशमें हो जाते हैं और उसके चरणकी सेवा करते हैं॥ १३९॥ १४१॥

करोति रसनां योगी प्रविष्टां विपरीतगाम्।
लम्बिकोर्ध्वेषु गर्तेषु धृत्वा ध्यानं भयापहम्॥१४२॥

अस्मिन् स्थाने मनो यस्य क्षणार्धं वर्ततेऽचलम् ।
तस्य सर्वाणि पापानि संक्षयं यान्ति तत्क्षणात् ॥

जो योगी विपरीतगामी जिह्वाको ऊपर तालुमूलमें प्रवेश करके यह भयनाशक आज्ञाकमलका ध्यान अर्धक्षणभी मन अचल स्थिरतापूर्वक करते हैं उनका सकल पातक उसी क्षण नाश हो जाता है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

यानि यानीह प्रोक्तानि पञ्चपद्मे फलानि वै ।
तानि सर्वाणि सुतरामेतज्ज्ञानाद्भवन्ति हि ॥ १४४॥

पंच पद्मका जो जो फल पहिले कहा है सो सबका समस्त फल आपही इस आज्ञाकमलके ध्यानसेही प्राप्त हो जायगा १४४

यः करोति सदाभ्यासमाज्ञापद्मे विचक्षणः ।
वासनाया महाबन्धं तिरस्कृत्य प्रमोदते ॥ १४५ ॥

जो बुद्धिमान् सर्वदा मन स्थिर करके यह आज्ञापद्मका अभ्यास करते हैं वह वासनारूपी महाबन्धको निरादर करके आनन्द लाभ करते हैं ॥ १४५ ॥

प्राणप्रयाणसमये तत्पद्मं यः स्मरन्सुधीः ।
त्यजेत्प्राणं स धर्मात्मा परमात्मनि लीयते ॥१४६॥

जो बुद्धिमान् मृत्युके समय उस आज्ञापद्मका ध्यान करेगा सो धर्मात्मा प्राणको त्यागके परमात्मामें लय हो जायगा १४६

तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् जाग्रत् योध्यानं कुरुते नरः।
पापकर्मविकुर्वाणो नहि मज्जति किल्बिषे ॥ १४७ ॥

जो मनुष्य बैठे चलते जाग्रतमें स्वप्नमें सर्वदा उसकमलका

ध्यान करते हैं सो यदि पापकर्मरतभी हो तो भी मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ १४७ ॥

राजयोगाधिकारी स्यादेतच्चिन्तनतो ध्रुवम् ।
योगी बन्धाद्विनिर्मुक्तः स्वीयया प्रभया स्वयम् १४८
द्विदलध्यानमाहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ।
ब्रह्मादिदेवताश्चैव किञ्चिन्मत्तो विदन्ति ते ॥ १४९॥

जो इस कमलका ध्यान करता है वह निश्चय राजयोगका अधिकारी है, योगी स्वयं अपने प्रभासे सकलबन्धसे मुक्त हो जाता है। हे देवि ! इस द्विदल पद्मके माहात्म्यको कोई कहनेमें समर्थ नहीं है,ब्रह्मा आदि देवता इस पद्मके माहात्म्यको किञ्चित् हमारे द्वारा जानते हैं ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

सहस्रारपद्मविवरणम् ।

अत ऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम् ।
अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम् ॥१५०

इस आज्ञापद्मके ऊपर तालुमूलमें सहस्र दल कमल शोभायमान है उसी स्थानमें ब्रह्मरन्ध्रके विवरमूलमें सुषुम्णा स्थितहै॥

तालुमूले सुषुम्णास्य अधोवक्त्रा प्रवर्तते ।
मूलाधारेण योन्यन्ताः सर्वनाड्यः समाश्रिताः ।
ता बीजभूतास्तत्त्वस्य ब्रह्ममार्गप्रदायिकाः ॥१५१॥

वह सुषुम्णाका मुख तालुमूल अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रमें नीचेको वर्तमान है और मूलाधारसे योनि पर्यन्त जो सकल नाडी हैं वह इस तत्वज्ञान बीजस्वरूप ब्रह्ममार्गकी दाता सुषुम्णाके अधोवदनके अवलम्बसे स्थित हैं ॥ १५१ ॥

तालुस्थाने च यत्पद्मं सहस्रारं पुरोदितम् ।
तत्कन्दे योनिरेकास्ति पश्चिमाभिमुखी मता॥१५२॥
तस्य मध्ये सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तमामूलाधारपङ्कजम् ॥ १५३ ॥

तालुस्थानमें जो सहस्रदलकमल कहा गया है उसके कन्दमें एक योनि पश्चिमाभिमुखी है अर्थात् पीछेको मुख है उस योनिके मध्यमें जो मूलविवर है उसमें सुषुम्णा ज्ञाननाडी स्थित है। हे देवि ! इसको ब्रह्मरन्ध्र और इसीको मूलाधारपद्मभी कहते हैं ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

तत्रान्तरन्ध्रे चिच्छक्तिः सुषुम्णा कुण्डली सदा॥१५४
सुषुम्णायां स्थिता नाडी चित्रा स्यान्मम वल्लभे ।
तस्यां मम मते कार्या ब्रह्मरन्ध्रादिकल्पना ॥१५५॥

यह सुषुम्णानाडीके रन्ध्रमें कुण्डलनी शक्ति सर्वदा विराजमान है यह सुषुम्णा अन्तरगता शक्तिको चित्रनाडी कहते हैं। हे प्रिये पार्वति ! हमारे मतमें इसी चित्रासे ब्रह्मरन्ध्र आदि कल्पना भई है ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्मज्ञत्वं प्रजायते ।
पापक्षयश्च भवति न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ १५६ ॥

यह चित्रानाडीके ध्यानमात्रसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, फिर संसार रूपी बन्धमें योगी नहीं पडता ॥ १५६ ॥

प्रवेशितं चलाङ्गुष्ठं मुखे स्वस्य निवेशयेत् ।
तेनात्र न वहत्येव देहचारी समीरणः ॥ १५७ ॥

दक्षिण हाथके अङ्गुष्ठको मुखमें प्रवेश करके मुखको बन्द करलेनेसे देहचारी जो प्राणवायु है वह निश्चय स्थिर होता है॥

तेन संसारचक्रेऽस्मिन्न भ्रमन्ते च सर्वदा।
तदर्थं ये प्रवर्तन्ते योगिनः प्राणधारणे॥ १५८॥
तत एवाखिला नाडी निरुद्धा चाष्टवेष्टनम्।
इयं कुण्डलिनी शक्ती रन्ध्रं त्यजति नान्यथा॥१५९॥

यह प्राणवायुके स्थिर होनेसे संसार चक्रमें सर्वदा भ्रमण छूट जाता है। अर्थात् मोक्ष होजाता है इस हेतुसे योगी प्रणवायुके धारण करनेमें प्रवृत्त होते हैं और इस धारणसे सकलनाडी जो मल और काम क्रोधादि आठ प्रकारसे बन्धनमें हैं वह खुल जाती हैं तब यह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मरन्ध्रको निश्चय त्याग देती है इसको त्यागदेनेसे जीव ब्रह्मका सम्बन्ध होजाता है॥ १५९॥

यदा पूर्णासु नाडीषु संनिरुद्धानिलास्तदा।
बन्धत्यागेन कुण्डल्या मुखं रन्ध्राद्बहिर्भवेत्।
सुषुम्णायां सदैवायं वहेत्प्राणसमीरणः॥ १६०॥

जब वायु निरोध होके सकल नाडीमें पूर्ण होजायगा तब कुण्डलनी अपने बन्धको त्यागके ब्रह्मरन्ध्रके मुखको त्याग देगी तब प्राणवायुका प्रवाह सदैव सुषुम्णामें हो जायगा॥ १६०॥

मूलपद्मास्थिता योनिर्वामदक्षिणकोणतः।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा योनिमध्यगा॥ १६१॥
ब्रह्मरन्ध्रन्तु तत्रैव सुषुम्णाधारमण्डले।
यो जानाति स मुक्तः स्यात्कर्मबन्धाद्विचक्षणः १६२॥

मूलाधार पद्मस्थित जो योनि है उस योनिके वाम दक्षिण-भागमें इडा और पिंगला नाडी स्थित है और दोनों नाडीके बीचमें अर्थात् योनिके मध्यमें सुषुम्णाकी स्थिति है उसी सुषुम्णाके आधारमंडलमें अर्थात् उसके मध्यमें ब्रह्मरन्ध्र है जो इसको जानता है सो बुद्धिमान् कर्मबन्धसे मुक्त है ॥१६२॥

ब्रह्मरन्ध्रमुखे तासां सङ्गमः स्यादसंशयः ।
तस्मिन् स्नाने स्नातकानां मुक्तिः स्यादविरोधतः ॥

ब्रह्मरन्ध्रके मुखमें इन तीनों नाडियोंका निश्चय सम्बध है इसमें स्नान करनेसे ज्ञानी लोगोंको मुक्ति लाभ होगी ॥ १६३

गङ्गायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती ।
तासान्तु सङ्गमे स्नात्वा धन्यो याति पराङ्गतिम् १६४

गंगा यमुनाके मध्यमें सरस्वतीका प्रवाह है यह त्रिवेणी संगममें स्नान करनेसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १६४॥

इडा गङ्गा पुरा प्रोक्ता पिङ्गला चार्कपुत्रिका ।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां सङ्गोऽतिदुर्लभः १६५

इडा गंगा है, पिंगला यमुना है, मध्यमें सुषुम्णा सरस्वती है यह त्रिवेणीसंगम कहागया है इसका स्नान अति दुर्लभ है ॥

सितासिते सङ्गमे यो मनसा स्नानमाचरेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्मसनातनम् ॥ १६६ ॥

यह इडा और पिंगलाके संगममें मानसिक स्नान करनेसे साधक सर्वपापसे मुक्त होके सनातन ब्रह्ममें लय होजाता है ॥ १६६॥

त्रिवेण्यां सङ्गमे यो वै पितृकर्म समाचरेत् ।
तारयित्वा पितॄन्सर्वान्स याति परमां गतिम्॥ १६७॥

जो पुरुष इस त्रिवेणीसंगममें पितृकर्मका अनुष्ठान करते हैं वह सर्व पितृकुलको तारके परमगतिको लाभ करते हैं १६७॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
मनसा चिन्तयित्वा तु सोऽक्षयं फलमाप्नुयात्॥ १६८॥

उसी संगमस्थानमें जो साधक नित्य और नैमित्तिक और काम्य कर्मका अनुष्ठान सर्वदा मनसे चिंतनपूर्वक करते हैं सो अक्षय फललाभ करते हैं ॥ १६८ ॥

सकृद्यः कुरुते स्नानं स्वर्गे सौख्यं भुनक्ति सः ।
दग्ध्वा पापानशेषान्वै योगी शुद्धमतिः स्वयम् १६९
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
स्नानाचरणमात्रेण पूतो भवति नान्यथा ॥ १७० ॥

जो पवित्रमति योगी एकवार इस संगममें स्नान करते हैं वह सर्व पापको दग्ध करके स्वर्गका दिव्य भोग भोगते हैं और यह साधक पवित्र हो वा अपवित्र हो वा किसी अवस्थामें हो यह संगमके ध्यानरूपी स्नानमात्रसे निश्चय पवित्र हो जायगा १७०

मृत्युकाले प्लुतं देहं त्रिवेण्याः सलिले यदा ।
विचिन्त्य यस्त्यजेत्प्राणान्स तदा मोक्षमाप्नुयात् १७१

मृत्युके समयमें साधक जो यह चिन्तन करे कि हमारा शरीर त्रिवेणीके सलिलमें मग्न है तो उसी क्षण प्राणको त्यागके मोक्षगतिको प्राप्त होगा ॥ १७१ ॥

नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
गोप्तव्यं तत्प्रयत्नेन न व्याख्येयं कदाचन ॥ १७२॥

इस तीर्थसे परे त्रिभुवनमें दूसरा गुप्त तीर्थ नहीं है इसको यत्नसे गोपित रखना उचित है यह कदापि प्रकाश न करे १७२

ब्रह्मरन्ध्रे मनो दत्त्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ १७३ ॥

ब्रह्मरन्ध्रमें मन देकरके यदि क्षणार्धभी स्थिर रक्खे तो सर्व पापसे मुक्त होके साधक परमगतिको अर्थात् मोक्ष होजाय १७३

अस्मिन् लीनं मनो यस्य स योगी मयि लीयते।
अणिमादिगुणान् भुक्त्वा स्वेच्छया पुरुषोत्तमः १७४

हे पार्वति ! इस ब्रह्मरन्ध्रमें जिसका मन लीन होय सो पुरुषोत्तम योगी अणिमादिगुणोंको भोगके इच्छापूर्वक हमारेमें लय होजायगा ॥ १७४ ॥

एतद्रन्ध्रध्यानमात्रेण मर्त्यः
संसारेऽस्मिन् वल्लभो मे भवेत्सः।
पापान् जित्वा मुक्तिमार्गाधिकारी
ज्ञानं दत्त्वा तारयत्यद्भुतं वै ॥ १७५ ॥

हे देवि ! इस ब्रह्मरन्ध्रके ध्यानमात्रसे इस संसारमें प्राणी हमको प्रिय होजाता है और पापराशिको जीतके यह साधक मुक्तिमार्गका अधिकारी हो जाता है और अनेक मनुष्योंको ज्ञान उपदेश करके संसारसे परित्राण कर देता है ॥ १७५ ॥

चतुर्मुखादित्रिदशैरगम्यं योगिवल्लभम्।
प्रयत्नेन सुगोप्यं तद्ब्रह्मरन्ध्रं मयोदितम् ॥ १७६ ॥

हे देवि ! यह ब्रह्मरन्ध्रका ध्यान जो हमने कहा है इसको यत्नकरके गोपित रखना उचित है यह ज्ञान योगीलोगोंको अतिप्रिय है इसका मार्ग ब्रह्मादि देवताकोभी अगम्य है॥७६॥

पुरा मयोक्ता या योनिः सहस्रारे सरोरुहे।
तस्याधो वर्तते चन्द्रस्तद्ध्यानं क्रियते बुधैः॥१७७॥

हे देवि ! पहिले जो सहस्रदलकमलके मध्यमें योनिमण्डल हमने कहा है उस योनिके अधोभागमें चन्द्रमा स्थित है यह चन्द्रमण्डलका बुद्धिमान् लोग सर्वदा ध्यान करते हैं॥१७७॥

यस्य स्मरणमात्रेण योगीन्द्रोऽवनिमण्डले।
पूज्यो भवति देवानां सिद्धानां सम्मतो भवेत्॥१७८

इस चन्द्रमण्डलके ध्यानमात्रसे योगीन्द्र संसारमें पूजनीय हो जाता है और देवता और सिद्धलोगोंके तुल्य हो जाता है॥

शिरःकपालविवरे ध्यायेद्दुग्धमहोदधिम्।
तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्रं विचिन्तयेत्॥१७९॥

शिरस्थित जो कपालविवर है उसमें क्षीरसमुद्रका ध्यानकरे उसी स्थानमें स्थितिपूर्वक सहस्रदलकमलमें चन्द्रमाका चिन्तनकरे॥

शिरःकपालविवरे द्विरष्टकलया युतः।
पीयूषभानुहंसाख्यं भावयेत्तं निरञ्जनम्॥ १८०॥
निरन्तरकृताभ्यासात्त्रिदिने पश्यति ध्रुवम्।
दृष्टिमात्रेण पापौघं दहत्येव स साधकः॥ १८१॥

वह शिरस्थित कपालविवरमें सोलह कला संयुक्त अमृतकिरणसे युक्त हंससंज्ञक निरंजनका चिन्तन करे। निरन्तर तीन दिन यह अभ्यास करनेसे निरञ्जनका साक्षात्साधकको अवश्य प्रकाश होगा सो साधक दृष्टिमात्रसे सर्वपातकको दहन कर डालेगा ॥

अनागतञ्च स्फुरति चित्तशुद्धिर्भवेत्खलु ।
सद्यः कृत्वापि दहति महापातकपञ्चकम् ॥ १८२ ॥

यह ध्यान करनेसे अनागत विषयकी स्फूर्ति होगी। अर्थात् जो विषय कभी उत्पन्न नहीं भया है उसकी स्फूर्ति होगी चित्तकी शुद्धि होगी, साधक ध्यानमात्रसे उसी क्षण पञ्चमहापातक दहन कर डालेगा ॥ १८२ ॥

आनुकूल्यं ग्रहा यान्ति सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ।
उपसर्गाः शमं यान्ति युद्धे जयमवाप्नुयात् ॥ १८३ ॥
खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेच्छीरेन्दुदर्शनात् ।
ध्यानादेव भवेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ १८४॥
सन्तताभ्यासयोगेन सिद्धो भवति मानवः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥
योगशास्त्रं च परमं योगिनां सिद्धिदायकम्॥ १८५॥

शिरस्थचन्द्रमाका ध्यान करनेसे सर्वग्रह अनुकूल होजाते हैं। समस्त उपद्रवका नाश हो जाता है, उपसर्ग प्रशमित होते हैं, युद्धमें जय लाभ होता है, खेचरी भूचरीकी सिद्धि प्राप्त होती है; इसमें सन्देह नहीं है। निरन्तर यह योग अभ्यास करनेसे अवश्य साधक सिद्ध हो जाता है। हे पार्वति ! हम सत्य

सत्य वारंवार कहते हैं कि–हमारे तुल्य हो जायगा इसमें सन्देह नहीं है यह परमयोग योगी लोगोंके सिद्धिका दाताहै १८३-८५

राजयोगकथनम् ।

अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम् ।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम् १८६
कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति ।
अकुलाख्योऽविनाशी च क्षयवृद्धिविवर्जितः॥ १८७॥

तालुके ऊपरभागमें दिव्य सहस्रदल कमल है यह कमल मुक्तिदाता ब्रह्माण्डरूपी शरीरके बाहर स्थित है । अर्थात् शरीरके ऊपर अंतमें है इसी कमलको कैलास कहते हैं इसी स्थानमें महेश्वरकी स्थिति है यह ईश्वर निराकुल अविनाशी और क्षय वृद्धि रहित है ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

स्थानस्यास्य ज्ञानमात्रेण नृणां संसारेऽस्मिन्
सम्भवो नैव भूयः । भूतग्रामं सन्तताभ्यासयो-
गात् कर्तुं हर्तुं स्याच्च शक्तिः समग्रा ॥ १८८ ॥

इस स्थानके ज्ञानमात्रसे जीवका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता सर्वदा यह ज्ञान योग अभ्यास करनेसे जीवमात्रके स्थिति संहार करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८८ ॥

स्थाने परे हंसनिवासभूते कैलासनाम्नीह निवि-
ष्टचेताः । योगी हृतव्याधिरधःकृताधिर्वायुश्चिरं
जीवति मृत्युमुक्तः ॥ १८९ ॥

यह कैलासनामक स्थानमें परमहंसका निवास है सो सहस्र-

दल कमलमें जो साधक मनको स्थिर करता है उसकी सकल व्याधि नाश होजाती है और मृत्युसे छूटके अमर होजाता है ॥

चित्तवृत्तिर्यदा लीना कुलाख्ये परमेश्वरे ।
तदा समाधिसाम्येन योगी निश्चलतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

जब साधक यह कुलनामक ईश्वरमें चित्तको लीन कर देगा तब योगीकी समाधि निश्चल सम हो जायगी ॥ १९० ॥

निरन्तरकृते ध्याने जगद्विस्मरणं भवेत् ।
तदा विचित्रसामर्थ्यं योगिनो भवति ध्रुवम् ॥ १९१ ॥

यह निरन्तर ध्यान करनेसे जगत् विस्मरण होजायगा तब योगीको अवश्य विचित्र सामर्थ्य हो जायगी ॥ १९१ ॥

तस्माद्गलितपीयूषं पिबेद्योगी निरन्तरम् ।
मृत्योर्मृत्युं विधायाशु कुलं जित्वा सरोरुहे ॥ १९२ ॥
अत्र कुण्डलिनीशक्तिर्लयं याति कुलाभिधा ।
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि ॥ १९३ ॥

सहस्रदल कमलसे जो अमृत स्रवता है उसको योगी निरन्तर पान करता है सो योगी अपने मृत्युका विधानपूर्वक कुलसहित जय करके चिरंजीवी हो जाता है । यही सहस्रदलकमलमें कुलरूपा कुण्डलनी शक्तिका लय हो जाता है तब यह चतुर्विध सृष्टिभी परमात्मामें लय हो जाती है ॥ १९२ ॥ १९३

यज्ज्ञात्वा प्राप्य विषयं चित्तवृत्तिर्विलीयते ।
तस्मिन्परिश्रमं योगी करोति निरपेक्षकः ॥ १९४ ॥

यह सहस्रदलकमलके ज्ञान होनेसे अर्थात् इस विषयको

प्राप्त करनेसे चित्तवृत्तिका लय हो जाता है इस हेतुसे इसके ज्ञानार्थ निरपेक्षरूपसे योगी परिश्रम करे ॥ १९४ ॥

चित्तवृत्तिर्यदा लीना तस्मिन् योगी भवेद् ध्रुवम् ।
तदा विज्ञायतेऽखण्डज्ञानरूपी निरञ्जनः ॥ १९५ ॥

जब योगीकी चित्तवृत्ति इसमें निश्चय लय हो जायगी तब अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जनका प्रकाश होगा अर्थात् ज्ञान होगा ॥

ब्रह्मांडबाह्ये संचिन्त्य स्वप्रतीकं यथोदितम् ।
तमावेश्य महच्छून्यं चिन्तयेदविरोधतः ॥ १९६ ॥

ब्रह्माण्डके बाहर अर्थात् शरीरके बाहर पूर्वोक्त स्वप्रतीकका चिन्तन करे उससे चित्तको स्थिर करके महत् शून्यका शुद्धवृत्तिसे चिन्तन करे ॥ १९६ ॥

आद्यन्तमध्यशून्यं तत्कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशमभ्यस्य सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १९७

आदि अंत मध्य शून्य यह सर्वत्र शून्यमें कोटि सूर्यके समान प्रभा और कोटि चन्द्रके समान शीतलप्रकाशके देखनेका अभ्यास करनेसे साधकको परमसिद्धि लाभ होगी ॥ १९७ ॥

एतत् ध्यानं सदा कुर्यादनालस्यं दिने दिने ।
तस्य स्यात्सकला सिद्धिर्वत्सरान्नात्र संशयः ॥१९८

जो पुरुष आलस्यको त्यागके सर्वदा प्रतिदिन इस शून्यका ध्यान करेगा उसको निश्चय एकवर्षमें सकल सिद्धि लाभ होगी॥

क्षणार्धं निश्चलं तत्र मनो यस्य भवेद् ध्रुवम् ।
स एव योगी सद्भक्तः सर्वं लोकेषु पूजितः ।
तस्य कल्मषसङ्घातस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ १९९ ॥

जो साधक इस शून्यमें अर्धक्षणभी मनको निश्चल स्थिर रक्खेगा वही निश्चय यथार्थ भक्त योगी है, वह सर्वलोकमें पूजित होता है, उसके पापका समूह उसी क्षण नष्ट हो जाता है १९९

यं दृष्ट्वा न प्रवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।
अभ्यसेत्तं प्रयत्नेन स्वाधिष्ठानेन वर्त्मना ॥ २०० ॥

इसके अवलोकन करनेसे मृत्युरूप जो संसारपथ है इसमें भ्रमण करना छूट जायगा । अर्थात् जन्ममरणसे रहित होजायग इसका अभ्यास स्वाधिष्ठानमार्गसे यत्न करके करना उचित है।

एतत् ध्यानस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
यः साधयति जानाति सोऽस्माकमपि सम्मतम् ॥

हे देवि ! इस शून्यके ध्यानके माहात्म्यको हम नहीं कह सकते अर्थात् बहुत विशेष है जो योगी इसका अभ्यास करते हैं सो जानते हैं वे हमारे बराबर हैं ॥ २०१ ॥

ध्यानादेव विजानाति विचित्रफलसंभवम् ।
अणिमादिगुणोपेतो भवत्येव न संशयः ॥ २०२ ॥

यह शून्यके ध्यानकरनेवाला साधकही जानता है इसके प्रभावसे साधकको अणिमादि अष्टसिद्धि अवश्य प्राप्त होती हैं॥

राजाधिराजयोगकथनम् ।

राजयोगो मया ख्यातः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ।
राजाधिराजयोगोऽयं कथयामि समासतः ॥ २०३ ॥

हे पार्वति ! यह राजयोग सर्व तन्त्रोंकरके गोपित है सो तुमसे हमने कहा है अब राजाधिराजयोग विस्तारसहित कहते हैं श्रवण करो ॥ २०३ ॥

स्वस्तिकञ्चासनं कृत्वा सुमठे जन्तुवर्जिते ।
गुरुं संपूज्य यत्नेन ध्यानमेतत्समाचरेत् ॥ २०४ ॥

साधक एकांत स्थान जनरहित सुन्दर मठमें यत्नपूर्वक गुरुकी पूजा करके स्वस्तिकासनसे स्थित होके यह ध्यान करे २०४॥

निरालम्बं भवेज्जीवं ज्ञात्वा वेदान्तयुक्तितः ।
निरालम्बं मनः कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेत् सुधीः ॥

बुद्धिमान् योगी वेदान्त युक्ति अनुसार जीवको और मनको निरालम्ब करके चिन्तन करे, दूसरा कुछ चिन्तना न करे २०५

एतद्ध्यानान्महासिद्धिर्भवत्येव न संशयः ।
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा पूर्णरूपं स्वयं भवेत् ॥२०६॥

इसप्रकार ध्यान करनेसे महासिद्धि उत्पन्न होगी इसमें संशय नहीं है ऐसेही मनको वृत्तिहीन करके साधक आपही पूर्ण आत्मस्वरूप हो जायगा ॥ २०६ ॥

साधयेत्सततं यो वै स योगी विगतस्पृहः ।
अहंनाम न कोऽप्यस्ति सर्वदात्मैव विद्यते ॥२०७॥

जो योगी निरन्तर इसप्रकार साधन करे सो इच्छारहित है। अर्थात् उसको किसी वस्तुकी इच्छा न होगी उसके वदनसे अहंशब्द कभी उच्चारण न होगा, वह सर्वदा सर्ववस्तुको आत्मस्वरूपही देखेगा ॥ २०७ ॥

को बन्धः कस्य वा मोक्ष एकं पश्येत्सदा हि सः ।
एतत् करोति यो नित्यं स मुक्तो नात्र संशयः ॥
स एव योगी सद्भक्तः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ २०८ ॥

कौन बन्ध है और क्या मोक्ष है ? सर्वदा एक परिपूर्ण आत्माको देखे जो योगी यह नित्य चिन्तन करता है सो मुक्त है इसमें संशय नहीं है; निश्चय वही योगी सद्भक्त है सर्व लोकमें पूजनीय है ॥ २०८ ॥

अहमस्मीति यन्मत्वा जीवात्मपरमात्मनोः ।
अहं त्वमेतदुभयं त्यक्त्वा खण्डं विचिन्तयेत् २०९
अध्यारोपापवादाभ्यां यत्र सर्वं विलीयते ।
तद्बीजमाश्रयेद्योगी सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ २१० ॥

योगी अपनेको जीवात्मा परमात्माको तुल्य माने अर्थात् भेदरहित हो जाय हम तुम यह दोनों भावको त्यागके एक अखण्ड ब्रह्मका चिन्तन करे अध्यारोप अपवादद्वारा जिसमें सर्व वस्तुका लय हो जाता है योगी सर्वसङ्गसे रहित होके उसी बीजके आश्रय हो जाय अर्थात् चित्तवृत्तिको आत्मामें लयकरदे २१०

अपरोक्षं चिदानन्दं पूर्णं त्यक्त्वा भ्रमाकुलाः ।
परोक्षं चापरोक्षं च कृत्वा मूढा भ्रमन्ति वै ॥ २११॥

मूढबुद्धिके मनुष्य अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष परिपूर्ण ब्रह्मको छोड करके भ्रममें पडके परोक्ष और अपरोक्षका रात्रि दिवस निर्णय करते फिरते हैं ॥ २११ ॥

चराचरमिदं विश्वं परोक्षं यः करोति च।
अपरोक्षं परं ब्रह्म त्यक्तं तस्मिन्प्रलीयते ॥ २१२ ॥

जो मनुष्य यह चराचर संसारके शास्त्रसे विवाद करते हैं और अपरोक्ष परब्रह्मको त्याग देते हैं अर्थात् ब्रह्मभी प्राप्त नहीं होता वह अज्ञानी संसारमें लय होते हैं अर्थात् उनका मोक्ष नहीं होता ॥ २१२ ॥

ज्ञानकारणमज्ञानं यथा नोत्पद्यते भृशम्।
अभ्यासं कुरुते योगी सदा सङ्गविवर्जितः ॥ २१३ ॥

जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है और अज्ञानका नाश होता है इसी योगाभ्यासको योगी सर्वदा सङ्गरहित होके अभ्यास करे॥

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य विषयेभ्यो विचक्षणः।
विषयेभ्यः सुषुप्त्येव तिष्ठेत्संगविवर्जितः ॥ २१४ ॥

बुद्धिमान् योगी विषयोंसे इन्द्रियोंको रोकके सङ्गरहित होके विषयके त्यागमें सुषुप्तिके समान स्थिर रहते हैं ॥ २१४ ॥

एवमभ्यासतो नित्यं स्वप्रकाशं प्रकाशते।
श्रोतुं बुद्धिसमर्थार्थं निवर्तन्ते गुरोर्गिरः।
तदभ्यासवशादेकं स्वतो ज्ञानं प्रवर्त्तते ॥ २१५ ॥

इसी प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे साधकको आपही ज्ञानका प्रकाश होगा तब गुरुके वचनकी निवृत्ती होगी अर्थात् गुरुके उपदेशका अंत हो जायगा जब इतर वाक्य श्रवण करनेकी इच्छा निवृत्त हो जायगी तब यह योगाभ्यासद्वारा आपही एक अद्वैत ज्ञानमें प्रवृत्ति होगी ॥ २१५ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
साधनादमलं ज्ञानं स्वयं स्फुरति तद्ध्रुवम् ॥२१६॥

यह ब्रह्म किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता मन वाक्यकाभी गम नहीं है यह योगसाधनसे आपही निर्मल ज्ञान प्रकाश होता है ॥

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ।
तस्मात् प्रवर्तते योगी हठे सद्गुरुमार्गतः ॥ २१७ ॥

हठयोगके विना राजयोग और राजयोगके विना हठयोग सिद्ध नहीं होता इस हेतुसे योगीको उचित है कि योगवेत्ता सद्गुरुद्वारा हठयोगमें प्रवृत्त होय ॥ २१७ ॥

स्थिते देहे जीवति च योगं न श्रियते भृशम् ।
इन्द्रियार्थोपभोगेषु स जीवति न संशयः ॥ २१८ ॥

जो मनुष्य इस शरीरसे योगका आसरा नहीं ग्रहण करते वह केवल इन्द्रियोंके भोग भोगनेके अर्थ संसारमें जीते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २१८ ॥

अभ्यासपाकपर्यन्तं मितान्नं स्मरणं भवेत् ।
अन्यथा साधनं धीमान्कर्तुं पारयतीह न ॥ २१९ ॥

बुद्धिमान् साधक योगाभ्यासके आरम्भसे अभ्यास सिद्ध-पर्यंत मिताहारी रहे । अर्थात् प्रमाणका भोजन करे । अन्यथा अर्थात् अप्रमाण भोजन करनेसे योगाभ्यासके पार न होगा अर्थात् सिद्ध न होगा ॥ २१९ ॥

अतीव साधुसंलापं साधुसम्मतिबुद्धिमान् ।
करोति पिण्डरक्षार्थं बह्वालापविवर्जितः ॥ २२० ॥

त्याज्यते त्यज्यते सङ्गं सर्वथा त्यज्यते भृशम्।
अन्यथा न लभेन्मुक्तिं सत्यं सत्यं मयोदितम्॥२२१॥

बुद्धिमान् साधक सभामें साधूके समान थोडा और प्रमाण वाक्य बोले और शरीरके रक्षार्थ थोडा भोजन करे और संगको सर्वप्रकारसे तज दे कदापि किसीके संगमें लिप्त न होय। हे पार्वति! दूसरे प्रकार कदापि मुक्ति नहीं पावेगा यह हम सर्वथा सत्य कहते हैं इसमें संशय नहीं है॥ २२०॥ २२१॥

गुह्यैव क्रियतेऽभ्यासः सङ्गं त्यक्त्वा तदन्तरे।
व्यवहाराय कर्तव्यो बाह्यसंगो न रागतः॥ २२२॥
स्वे स्वे कर्मणि वर्तन्ते सर्वे ते कर्मसंभवाः।
निमित्तमात्रं करणे न दोषोऽस्ति कदाचन॥२२३॥

साधक संगरहित होके एकान्त स्थानमें योगसाधन करे यदि संसारी मनुष्योंसे व्यवहार वर्तनेकी इच्छा करे तो अन्तर प्रीति रहित होके बाह्यसंग करे और अपना आश्रम धर्म कर्मभी इसी प्रकार करता रहे इस हेतुसे कि ज्ञानादि यावत् कर्म हैं सब कर्मानुसार होते हैं, फल इच्छा रहित होके केवल निमित्तमात्र कर्म करनेसे कदापि दोष नहीं है॥ २२२॥ २२३॥

एवं निश्चित्य सुधिया गृहस्थोऽपि यदा चरेत्।
तदा सिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥२२४॥

इसीप्रकार निश्चय बुद्धिसे यदि गृहस्थभी योगाभ्यास करे तो वह अवश्य सिद्धिलाभ करेगा इसमें संशय नहीं है॥ २२४

पापपुण्यविनिर्मुक्तः परित्यक्ताङ्गसाधकः ।
यो भवेत्स विमुक्तः स्यात् गृहे तिष्ठन्सदा गृही २२५
न पापपुण्यैर्लिप्येत योगयुक्तो यदा गृही ।
कुर्वन्नपि तदा पापान्स्वकार्यं लोकसंग्रहे ॥ २२६ ॥

जो साधक पाप पुण्यसे निर्लिप्त इंद्रिय संगत्यागी है सोई गृहसाधक गृहमें रहके मुक्त है योगयुक्त गृही पाप पुण्यमें बद्ध नहीं होता यदि संसारके संग्रहमें पापभी करेगा तो वह पाप उसको स्पर्श न करेगा ॥ २२५-२२६ ॥

अधुना संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनमुत्तमम् ।
ऐहिकामुष्मिकसुखं येन स्यादविरोधतः ॥ २२७ ॥

हे देवि ! अब उत्तम मन्त्र साधन हम कहते हैं—जिससे इस लोक परलोक दोनों स्थानमें साधक आनंदपूर्वक सुख भोगेगा॥

यस्मिन्मन्त्रवरे ज्ञाते योगसिद्धिर्भवेत् खलु ।
योगेन साधकेन्द्रस्य सर्वैश्वर्यसुखप्रदा ॥ २२८ ॥

यह उत्तम मंत्रके ज्ञान होनेसे निश्चय योग सिद्ध होता है साधकेन्द्रको यह योग सर्व ऐश्वर्य सुखका दाता है ॥ २२८ ॥

मूलाधारेऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमान्वितम् ।
तन्मध्ये वाग्भवं बीजं विस्फुरन्तं तडित्प्रभम् २२९
हृदये कामबीजन्तु बन्धूककुसुमप्रभम् ।
आज्ञारविन्दे शक्त्याख्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥२३०
बीजत्रयमिदं गोप्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
एतन्मन्त्रत्रयं योगी साधयेत्सिद्धिसाधकः ॥२३१॥

जो मूलाधार चतुर्दल संयुक्त पद्म है उसमें विद्युत्के समान प्रभायुक्त वाग्बीजकी स्थिति है, हृदयकमलमें बन्धूकपुष्पके समान प्रभायुक्त कामबीजकी स्थिति है और आज्ञाकमलमें कोटिचन्द्रके समान प्रभायुक्त शक्तिबीजकी स्थिति है। यह बीजत्रय परमगोपनीय भोग और मुक्तिके दाता है यह तीनों मन्त्रका साधन योगी अवश्य करे ॥ २२९–२३१ ॥

एतन्मन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा न द्रुतं न विलम्बितम्।
अक्षराक्षरसन्धानं निःसन्दिग्धमना जपेत् ॥ २३२ ॥

साधक गुरुसे यह मन्त्रका उपदेश लेके धीरे धीरे अक्षर अक्षर स्पष्ट उच्चारणपूर्वक स्थिरमन होके जप करे ॥ २३२ ॥

तद्गतश्चैकचित्तश्च शास्त्रोक्तविधिना सुधीः।
देव्यास्तु पुरतो लक्षं हुत्वा लक्षत्रयं जपेत् ॥२३३॥

बुद्धिमान् साधक एकाग्रचित्तसे शास्त्रविधि अनुसार, देवीके समीपमें एक लक्ष होम करके तीन लक्ष जप करे ॥ २३३ ॥

करवीरप्रसूनन्तु गुडक्षीराज्यसंयुतम्।
कुण्डे योन्याकृते धीमान् जपान्ते जुहुयात्सुधीः ॥

बुद्धिमान् साधक जपके पीछे योन्याकार कुण्ड बनायके कनेरपुष्पके साथ गुड और दूध और घृत मिलायके होम करे॥

अनुष्ठाने कृते धीमान् पूर्वसेवा कृता भवेत्।
ततो ददाति कामान्वै देवी त्रिपुरभैरवी ॥ २३५ ॥

बुद्धिमान् साधक इसी प्रकार अनुष्ठानपूर्वक आराधना

करके त्रिपुरभैरवी देवीको सन्तुष्ट करे तो उसको इच्छापूर्वक देवी फल देती है ॥ २३५ ॥

गुरुं सन्तोष्य विधिवत् लब्ध्वा मन्त्रवरोत्तमम् ।
अनेन विधिना युक्तो मन्दभाग्योऽपि सिध्यति २३६

साधक विधिपूर्वक गुरुको संतोष करके यह उत्तम मन्त्र ग्रहण करे इस विधान संयुक्त ग्रहण करनेसे मन्दभाग्य साधकभी सिद्धिलाभ करते हैं ॥ २३६ ॥

लक्षमेकं जपेद्यस्तु साधको विजितेन्द्रियः ।
दर्शनात्तस्य क्षुभ्यन्ते योषितो मदनातुराः ॥
पतन्ति साधकस्याग्रे निर्लज्जा भयवर्जिताः ॥२३७॥

योगी इन्द्रियनिग्रहपूर्वक एक लक्ष जप करे तो उसके दर्शन मात्रसे कामातुर स्त्रियें मोहित होयके साधकके आगे निर्लज्ज भयरहित होके गिरती हैं ॥ २३७ ॥

जप्तेन च द्विलक्षेण ये यस्मिन्विषये स्थिताः ।
आगच्छन्ति यथा तीर्थं विमुक्तकुलविग्रहाः ।
ददाति तस्य सर्वस्वं तस्यैव च वशे स्थिताः॥२३८॥

यह मन्त्र दो लक्ष जप करनेसे कामिनी स्त्रियें साधकके समीप आती हैं कि जैसे कुलीना तीर्थोंमें भयलज्जारहित होके जातीहै साधकके वशमें होके अपनासर्वस्व उसको देती हैं ॥ २३८ ॥

त्रिभिर्लक्षैस्तथा जप्तैर्मण्डलीकं समण्डलम् ।
वशमायान्ति ते सर्वे नात्र कार्या विचारणा ॥
षड्भिर्लक्षैर्महीपालं सभृत्यबलवाहनम् ॥ २३९ ॥

तीन लक्ष जप करनेसे मंडलसहित मंडलपति साधकके वशमें होजायँगे इसमें संशय नहीं है और छः लक्ष जप करनेसे साधक बलवाहन संयुक्त राजा हो जायगा ॥ २३९ ॥

लक्षैर्द्वादशभिर्जप्तैर्यक्षरक्षोरगेश्वराः।
वशमायान्ति ते सर्वे आज्ञां कुर्वन्ति नित्यशः॥२४०

यह मन्त्र बारह लक्ष जप करनेसे यक्ष और राक्षस और पन्नग यह सब वशमें होके साधककी नित्य आज्ञा पालन करते हैं ॥ २४० ॥

त्रिपञ्चलक्षजप्तैस्तु साधकेन्द्रस्य धीमतः।
सिद्धविद्याधराश्चैव गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ २४१ ॥
वशमायान्ति ते सर्वे नात्र कार्या विचारणा।
हठात् श्रवणविज्ञानं सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ २४२ ॥

पन्द्रह लक्ष जप करनेसे सिद्ध और विद्याधर गंधर्व अप्सरा यह सब बुद्धिमान् साधकके वश हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं है साधकको हठसे विशेष श्रवणशक्ति होगी सर्ववस्तुका ज्ञान उत्पन्न होगा ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

तथाष्टादशभिर्लक्षैर्देहेनानेन साधकः।
उत्तिष्ठेन्मेदिनीं त्यक्त्वा दिव्यदेहस्तु जायते।
भ्रमते स्वेच्छया लोके छिद्रां पश्यति मेदिनीम्॥२४३

जो साधक अठारह लक्ष जप करेगा वह भूमिको त्यागके दिव्यदेह होके आकाशमार्गसे संसारमें इच्छापूर्वक भ्रमण करेगा

और पृथ्वीके छिद्रोंको देखेगा अर्थात् पृथ्वीमें प्रवेश करनेके मार्ग देखेगा ॥२४३ ॥

शिवसंहिताफलकथनम् ।

अष्टाविंशतिभिर्लक्षैर्विद्याधरपतिर्भवेत् ।
साधकस्तु भवेद्धीमान्कामरूपो महाबलः ॥ २४४ ॥
त्रिंशल्लक्षैस्तथा जप्तैर्ब्रह्मविष्णुसमो भवेत् ।
रुद्रत्वं षष्टिभिर्लक्षैरमरत्वमशीतिभिः ॥ २४५ ॥
कोट्यैकया महायोगी लीयते परमे पदे ।
साधकस्तु भवेद्योगी त्रैलोक्ये सोऽतिदुर्लभः ॥२४६
त्रिपुरे त्रिपुरन्त्वेकं शिवं परमकारणम् ।
अक्षयं तत्पदं शान्तमप्रमेयमनामयम् ॥ २४७ ॥
लभतेऽसौ न सन्देहो धीमान् सर्वमभीप्सितम् !
शिवविद्या महाविद्या गुप्ता चाग्रे महेश्वरि ॥ २४८ ॥
मद्भाषितमिदं शास्त्रं गोपनीयमतो बुधैः ।
हठविद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता ॥२४९॥
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशिता ।
य इदं पठते नित्यमाद्योपान्तं विचक्षणः ॥ २५० ॥
योगसिद्धिर्भवेत्तस्य क्रमेणैव न संशयः ।
स मोक्षं लभते धीमान् य इदं नित्यमर्चयेत् ॥२५१
मोक्षार्थिभ्यश्च सर्वेभ्यः साधुभ्यः श्रावयेदपि ।
क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथम्भवेत् ॥
तस्मात् क्रिया विधानेन कर्तव्या योगिपुङ्गवैः ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टः सन्त्यक्तान्तरसंगकः ॥ २५३ ॥

गृहस्थश्चाप्यनासक्तः स मुक्तो योगसाधनात् ।
गृहस्थानां भवेत् सिद्धिरीश्वराणां जपेन वै ॥
योगक्रियाभियुक्तानां तस्मात्संयतते गृही ॥२५४॥

गेहे स्थित्वा पुत्रदारादिपूर्णः
सङ्गं त्यक्त्वा चान्तरे योगमार्गे ।
सिद्धे चिह्नं वीक्ष्य पश्चाद्गृहस्थः
क्रीडेत्सो वै सम्मतं साधयित्वा ॥ २५५ ॥

जो बुद्धिमान् साधक अट्ठाईस लक्ष जप करेगा वह महाबल कामरूपी और विद्याधरपति हो जायगा और तीस लक्ष जप करनेसे साधक ब्रह्मा विष्णुके समान हो जायगा और साठ लक्ष जप करनेसे रुद्रके समान हो जायगा और अस्सी लक्ष जप करनेसे साधक सर्व भूतोंको प्रिय हो जायगा और एक कोटि जप करनेसे साधक महायोगी होयके परम पदमें लीन हो जाता है। हे पार्वति ! इस प्रकार योगी त्रिभुवनमें दुर्लभ है हे पार्वति ! एक त्रिपुर शिवही परम कारण स्वरूप हैं उनका चरणकमल अक्षय शान्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाणरहित अनामय अर्थात् रोग रहित है सो चरणकमल बुद्धिमान् योगी लोगही इच्छापूर्वक लाभ करते हैं इसमें संदेह नहीं है। हे महादेवि ! यह हमारी कही हुई महाविद्याकोही शिवविद्या कहते हैं यह विद्या सर्वप्रकार गोपनीय है इस योगशास्त्रको बुद्धिमान् लोग कदापि प्रकाश नहीं हैं, सिद्धिकांक्षी योगीलोग इस हठविद्याको अतिगोपित रक्खें यह गोप्य रखनेसे वीर्यवती रहती है और प्रकाश

करनेसे निर्वीर्या हो जाती है जो विद्वान् यह शिवसंहिताका नित्य आद्योपान्त पाठ करेगा उसको क्रमसे अवश्य योगसिद्धि होगी और जो बुद्धिमान् इस ग्रन्थका नित्य पूजन करेगा उसको मुक्ति लाभ होगी. मोक्षार्थी और सर्व साधु और मनुष्य जो क्रियासे युक्त होगा उसको सिद्धि प्राप्त होगी क्रियाहीन मनुष्यको क्या हो सकता है अर्थात् सिद्धि लाभ नहीं हो सकती विधानपूर्वक क्रियाका अनुष्ठान करे तो इच्छापूर्वक लाभसे सन्तुष्ट होगा और जो गृहस्थ होगा और इन्द्रियोंमें आसक्त न होगा सो मनुष्य योगसाधनसे मुक्त होगा योगाक्रियावान् गृहस्थ लोगोंको जप करनेसे सिद्धि प्राप्त होगी इस हेतुसे योगसाधनमें गृहस्थ मनुष्यको यत्न करना उचित है, जो गृहस्थ गृहमें रहके स्त्री पुत्रादिसे पूर्ण होके अंतरीय सबके त्यागपूर्वक योगसाधनमें प्रवृत्त होय सो सिद्धिचिह्न अवलोकन पूर्वक साधना करके सर्वदा आनन्दमें क्रीडा करेगा ॥ २४४ ॥

श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगशास्त्रे पञ्चमः पटलः समाप्तः ॥ ५ ॥ शुभम् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बंबई.